# गुणस्थान स्वरूप

संकलन-सम्पादन

*धर्मचन्द जैन*

रजिस्ट्रार-अ.भा. श्री जैन रत्न आध्यात्मिक शिक्षण बोर्ड, जोधपुर

-: प्रकाशक :-

**सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल**

(संरक्षक : अखिल भारतीय श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ)

# गुणस्थान-स्वरूप

संकलन–सम्पादन

**धर्मचन्द जैन**

रजिस्ट्रार-अ.भा. श्री जैन रत्न आध्यात्मिक शिक्षण बोर्ड, जोधपुर

:: प्रकाशक ::

**सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल**

(संरक्षक : अ. भा. श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ)

# गुणस्थान-स्वरूप

प्रकाशक :

**सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल**

दुकान नं. 182 के ऊपर,
बापू बाजार, जयपुर-302003 (राज.)
फोन : 2575997
फैक्स : 0141-4068798

प्रथम संस्करण : 2004
द्वितीय संस्करण : 2005
तृतीय संस्करण : 2008
चतुर्थ संस्करण : 2012
पंचम संस्करण : 2016

मुद्रित प्रतियाँ : 500

सम्पादक :
**धर्मचन्द जैन**

अल्प मूल्य : **5/-** (पाँच रुपये मात्र)

लेज़र टाईप सैटिंग :
**सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल**

मुद्रक : दी डायमण्ड प्रिंटिंग प्रेस, जयपुर

*अन्य प्राप्ति स्थल :*

- **श्री स्थानकवासी जैन स्वाध्याय संघ**
  घोड़ों का चौक, **जोधपुर-342001** (राज.)
  फोन : 0291-2624891
- **Shri Navratan ji Bhansali**
  C/o. Mahesh Electricals,
  14/5, B.V.K. Ayangar Road,
  **BANGALURU-560053**
  (Karnataka)
  Mob. : 09844158943
- **श्री प्रकाशचन्दजी सालेचा**
  16/62, चौपासनी हाउसिंग बोर्ड,
  **जोधपुर-342001** (राजस्थान)
  फोन : 9461026279
- **श्रीमती विजयानन्दिनी जी मल्हारा**
  ''रत्नसागर'', कलेक्टर बंगला रोड़,
  चर्च के सामने, 491-ए, प्लॉट नं. 4,
  **जलगाँव-425001** (महा.)
  फोन : 0257-2223223
- **श्री दिनेश जी जैन**
  1296, कटरा धुलिया, चाँदनी चौक,
  दिल्ली-110006 फोन : 011-23919370
  मो. 09953723403

# प्रकाशकीय

थोकड़ों का जीवन में अत्यधिक महत्त्व है। ये हमारे आध्यात्मिक ज्ञान की अभिवृद्धि में सहायक हैं। इनके अध्ययन से हमको आगम के अनेक गूढ़ रहस्यों व सार तत्त्वों का परिचय प्राप्त होता है, मन सावद्य योग से निवृत्त होता है तथा जिनेश्वर द्वारा प्ररूपित धर्म पर श्रद्धा बढ़ती है।

तत्त्व ज्ञान का यद्यपि 32 आगमों में विशद् विवेचन दिया गया है, परन्तु आगमों को पढ़कर उसके अर्थ एवं मर्म को हृदयंगम करना अधिकतर लोगों के लिए बहुत कठिन होता है। अतः हमारे पूर्वाचार्यों ने अनन्त कृपा करके जिज्ञासु एवं मुमुक्षु बन्धुओं के लिए आगम के सार रूप में सरल सुबोध भाषा में थोकड़ों का निर्माण किया।

इस संस्था द्वारा थोकड़ों को एक व्यवस्थित क्रम से प्रकाशित किया जा रहा है, उसी क्रम में इस पुस्तक में "गुणस्थान-स्वरूप" का वर्णन किया गया है। जीव की आत्मिक-आध्यात्मिक, हीनाधिक-तरतम अवस्थाओं को गुणस्थान कहते हैं। संसारी जीव की निम्न अवस्था मिथ्यात्व से उच्चतम अवस्था तक पहुँचने के चौदह स्थान कहे गये हैं, इन्हें ही गुणस्थान संज्ञा दी गई है। इस थोकड़े में गुणस्थानों की विशेषताओं को नाम, लक्षण, स्थिति, क्रिया आदि 29 द्वारों के माध्यम से बताया गया है।

इन चौदह गुणस्थानों पर ही संसारी जीव का आत्मिक विकास और ह्रास अवलम्बित है। इस संस्करण में गुणस्थान स्वरूप के थोकड़े के पहले समकित प्राप्ति की प्रक्रिया तथा समकित प्राप्ति के संबंध में सैद्धांतिक व कार्मग्रंथिक मान्यताओं की महत्त्वपूर्ण जानकारी दी गई है, जो सुज्ञ जिज्ञासु पाठक गणों को जैनागमों के महत्त्वपूर्ण तथ्यों को समझने में सरलता होगी।

सभी सुहृदय मुमुक्षु पाठकगण सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल के इस नवीन प्रकाशन के अध्ययन से निश्चित ही लाभान्वित होंगे, ऐसी प्रबल आशा है।

थोकड़े के अध्ययन से पाठक गण अपना जीवन उन्नत व परिष्कृत कर मुक्तिगामी बनें, इसी मंगल कामना के साथ।

:: निवेदक ::

| | | |
|---|---|---|
| **पारसचन्द हीरावत** | **प्रमोदचन्द महनोत**<br>**पदमचन्द कोठारी** | **विनयचन्द डागा** |
| अध्यक्ष | कार्याध्यक्ष | मन्त्री |

**सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल**

# अनादि मिथ्यात्वी के सम्यक्त्व-प्राप्ति की संक्षिप्त प्रक्रिया

**योग्यता**–भवी जीव हो, शुक्ल पक्षी हो, चारों गति में सन्नी पंचेन्द्रिय हो, पर्याप्तक हो, मंद कषायी हो, गुण-दोषों के विचार से युक्त हो, मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान, विभंगज्ञान इन तीन में से किसी एक साकार उपयोग में वर्तमान हो, निद्रा-निद्रा, प्रचला-प्रचला और स्त्यानर्द्धि इन तीन प्रकृतियों का उदय जिसके नहीं हो, जागृत हो, भावों की अपेक्षा से तीन शुभ लेश्याओं में प्रवृत्त हो, परावर्त्तमान शुभ प्रकृतियों को बाँधने वाला हो, ऐसा जीव सम्यक्त्व प्राप्ति के योग्य होता है।

**पाँच लब्धियाँ–**

पंचसंग्रह भाग 9 के पृष्ठ संख्या 6 के अनुसार सम्यक्त्व प्राप्ति की योग्यता वाला जीव निम्नांकित 3 लब्धियों से सम्पन्न होता है–

1. **उपशमलब्धि**–मिथ्यात्व मोहनीय के दलिकों को सर्वथा उपशांत करने की शक्ति वाला हो।

2. **उपदेशलब्धि**–गुरु से उपदेश सुनने की शक्ति वाला हो, जिसमें कदाग्रह न हो, वही उपदेश सुनने की योग्यता वाला होता है।

3. **प्रायोग्य लब्धि**–मनोयोग, वचनयोग और काय योग में से कोई भी एक योग में उपयोग हो, अंतरंग कारणभूत अनुकम्पादि विशिष्ट गुण वाला हो।

**लब्धिसार ग्रन्थ** के अनुसार सम्यक्त्व प्राप्ति के पूर्व पाँच लब्धियाँ प्राप्त करना आवश्यक है। उन लब्धियों का संक्षिप्त स्वरूप इस प्रकार है–

1. **क्षयोपशम लब्धि**–आयु कर्म को छोड़कर शेष 7 कर्मों की अशुभ प्रकृतियों के अनुभाग को प्रति समय अनन्त गुणा हीन करना।

2. **विशुद्धि लब्धि**–आयु कर्म को छोड़कर शेष 7 कर्मों की शुभ प्रकृतियों के अनुभाग में प्रति समय अनन्त गुणी वृद्धि करना।

3. **देशना लब्धि**–तीर्थङ्कर, गणधर, आचार्य, उपाध्याय,

साधु-साध्वी आदि गुरुजनों से नवतत्त्व व षट्द्रव्यों के वास्तविक स्वरूप का बोध प्राप्त करना।

4. **प्रायोग्य लब्धि**–आयुकर्म के सिवाय शेष 7 कर्मों की स्थिति-सत्ता को घटाकर अन्त: कोटाकोटी सागरोपम प्रमाण करना।

5. **करण लब्धि**–जीव के परिणाम विशेष को करण कहते हैं। इस लब्धि में जीव अग्रांकित तीन करण करता है।

(अ) **यथाप्रवृत्त करण**–जैसे पर्वतीय नदी में कोई पत्थर पानी के बहाव के साथ रगड़ खाता हुआ गोल चिकना पत्थर बन जाता है, उसी प्रकार से जिन अध्यवसायों की विशुद्धि से, अकाम निर्जरा करते-करते मिथ्यात्व (राग-द्वेष) की गूढ़ एवं दुर्भेद्य ग्रन्थि के समीप पहुँच जाता है, उसे यथाप्रवृत्त करण कहते हैं। इसे ग्रन्थि-देश की प्राप्ति भी कहते हैं। इसका दूसरा नाम पूर्वप्रवृत्त करण अथवा अध:प्रवृत्तकरण भी कहा जाता है। यह करण अभवी जीव भी अनन्त बार प्राप्त कर लेता है।

(ब) **अपूर्वकरण**–जीव को ऐसे विशुद्ध परिणाम पहले कभी नहीं आये हो, उन्हें अपूर्वकरण कहते हैं। इसमें चार बातें अपूर्व होती हैं–1. स्थिति घात, 2. रस घात, 3. गुण श्रेणि, 4. अपूर्व स्थिति बंध। इस करण में भवी जीव ही प्रवेश करता है, अभवी नहीं। इस करण में मिथ्यात्व की तीव्र परिणाम रूप ग्रन्थि का भेदन कर देता है, उसे ग्रन्थि–भेद कहते हैं। इसका दूसरा नाम निवृत्तिकरण भी है। इस करण में प्रवेश किया हुआ जीव अवश्य ही समकित को प्राप्त करता है।

(स) **अनिवृत्तिकरण**–इस करण में सम–समयवर्ती त्रैकालिक जीवों के परिणामों में समानता होती है। प्रतिसमय परिणामों में अनंतगुणी विशुद्धि निरंतर बढ़ती रहती है। इस करण के बहुत संख्यात भाग बीतने पर तथा एक संख्यात भाग शेष रहने पर जीव मिथ्यात्व के दलिकों का अंतरकरण (दलिक रहित विशुद्ध भूमि तैयार करना) करता है।

## मिथ्यात्व मोहनीय के दलिकों का अंतरकरण

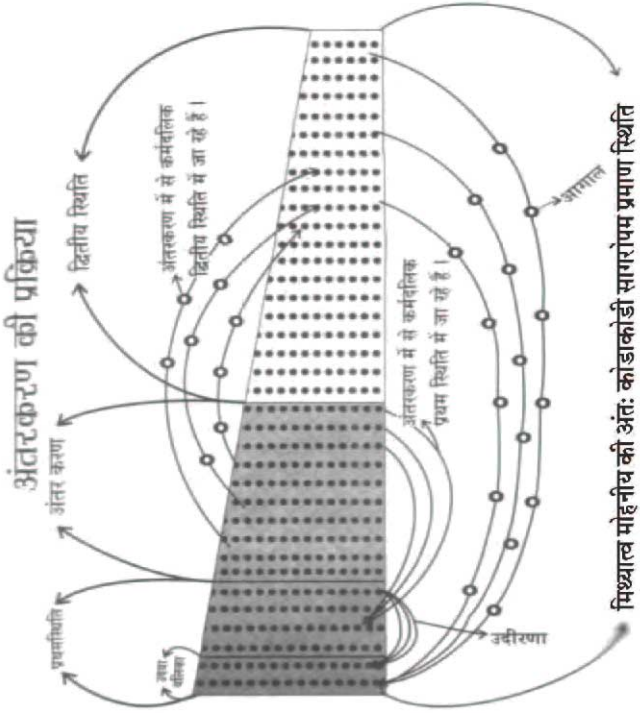


अंतरकरण की क्रिया में मिथ्यात्व मोहनीय की दो स्थितियाँ बनाता है। प्रथम स्थिति और द्वितीय स्थिति। एक अंतर्मुहूर्त्त में जो उदय में लाकर भोगी जा सके, उसे प्रथम स्थिति कहते हैं। एक अंतर्मुहूर्त्त के बाद में आने योग्य सत्ता में स्थित दर्शन मोहनीय की स्थिति को द्वितीय स्थिति कहते हैं।

प्रथम स्थिति के मिथ्यात्व मोहनीय के दलिकों को उदय में लाकर उनकी निर्जरा करते-करते जब अंतिम दलिक का वेदन किया जाता है तब जीव अंतरकरण में प्रेवश करता है, उस समय (A) द्वितीय स्थिति में रहे हुए मिथ्यात्व मोहनीय के दलिकों के अनुभाग को अपने विशुद्ध परिणामों से तीन भागों में बाँटकर त्रिपुंज करना प्रारंभ करता है, (B) साथ ही मिथ्यात्व मोहनीय के दलिकों का मिश्र मोहनीय तथा समकित मोहनीय में गुण संक्रमण भी प्रारंभ कर देता है। (C) त्रिपुंज किये गये दलिकों का प्रति समय उपशम भी करता रहता है। इस प्रकार से प्रथम स्थिति के मिथ्यात्व मोहनीय के दलिकों की निर्जरा कर देने के साथ ही वह उपशम समकित को प्राप्त कर लेता है। इस समकित के प्राप्त होते ही जीव को अपूर्व आत्मिक उल्लास एवं आनन्द की प्राप्ति होती है। उपर्युक्त लब्धियों व करणों में अन्तर्मुहूर्त्त-अन्तर्मुहूर्त्त का काल लगता है, कुल मिलाकर भी अन्तर्मुहूर्त्त ही काल लगता है।

उक्त विवेचन कार्मग्रन्थिक मतानुसार समझना चाहिए, क्योंकि इनके मतानुसार अनादि मिथ्यादृष्टि जीव प्रथम बार चतुर्थ गुणस्थान में आकर उपशम समकित (प्रथमोपशम) प्राप्त करता है।

सैद्धान्तिक मतानुसार (विशेषावश्यक भाष्य, बृहत्कल्प भाष्य, हारिभद्रीय आवश्यक वृत्ति, मलयगिरी वृत्ति, प्रवचन सारोद्धार आदि) अनादि का मिथ्यात्वी जीव प्रथम बार उपशम अथवा क्षयोपशम समकित प्राप्त कर सकता है।

**क्षयोपशम समकित की प्राप्ति**–जो जीव यथाप्रवृत्तकरण करने के बाद अपूर्वकरण में प्रवेश करता है, वहाँ अपूर्वकरण में परिणामों में तीव्र विशुद्धि आ जाने पर उसी समय मिथ्यात्व मोहनीय के दलिकों का त्रिपुंज कर लेता है। उसके बाद अनिवृत्तिकरण को करता हुआ अंतरकरण किये बिना ही क्षयोपशम समकित को प्राप्त कर लेता है।

**उपशम समकित की प्राप्ति**–जिन अनादि मिथ्यादृष्टि भवी जीवों के अपूर्वकरण में तीव्र विशुद्धि नहीं होती, वे जीव वहाँ पर त्रिपुंज नहीं करते हैं तथा अनिवृत्तिकरण में आकर अंतरकरण कर लेते हैं। प्रथम व द्वितीय स्थिति बनाते हैं। इन दोनों के बीच में अंतर्मुहूर्त्त काल तक के लिए विशुद्ध भूमि, दलिक रहित भूमि तैयार कर लेते हैं। प्रथम स्थिति के दलिकों को उदय में लाकर निर्जरा कर देते हैं तथा द्वितीय स्थिति के मिथ्यात्व के दलिकों का बिना

त्रिपुंज किये उपशम करना प्रारंभ कर देते हैं। ऐसे जीवों को प्रथमोपशम समकित प्राप्त होती है। बिना त्रिपुंज के उपशम समकित प्राप्त करने वाले होने से ये चतुर्थ गुणस्थान से आगे नहीं बढ़ पाते, इन्हें वापस नीचे मिथ्यात्व में आना ही पड़ता है।

बिना त्रिपुंज के समकित प्राप्त करने वाले अनादि मिथ्यादृष्टि जीव के मोहनीय कर्म की 26 प्रकृतियों की ही सत्ता रहती है, जबकि त्रिपुंज करने वाले जीवों के 28 प्रकृतियों की (मिश्र मोह व समकित मोह बढ़ी) सत्ता हो जाती है। त्रिपुंज किया हुआ जीव ही क्षयोपशम से क्षायिक समकित को प्राप्त कर सकता है। त्रिपुंज किया हुआ प्रथमोपशम वाला जीव भी क्षयोपशम समकित को प्राप्त करके द्वितीयोपशम को अथवा क्षायिक समकित को प्राप्त कर सकता है।

# गुणस्थान स्वरूप

गुणस्थानों[1] पर उनतीस द्वार हैं। वे इस प्रकार हैं–

**1. नाम 2. लक्षण 3. स्थिति 4. क्रिया 5. सत्ता 6. बंध 7. उदय 8. उदीरणा 9. निर्जरा 10. भाव 11. कारण 12. परीषह 13. आत्मा 14. जीव के भेद 15. गुणस्थान 16. योग 17. उपयोग 18. लेश्या 19. हेतु 20. मार्गणा 21. ध्यान 22. दण्डक 23. जीवयोनि 24. निमित्त 25. चारित्र 26. आकर्ष 27. समकित 28. अन्तर और 29. अल्पबहुत्व।**

## 1. नाम द्वार

गुणस्थानों के नाम–**1. मिथ्यात्व 2. सास्वादन 3. सम्यक्–मिथ्यादृष्टि (मिश्र) 4. अविरत सम्यग्दृष्टि 5. विरताविरत (देशविरति) 6. प्रमत्त–संयत्त 7. अप्रमत्त–संयत 8. निवृत्ति–बादर 9. अनिवृत्ति–बादर 10. सूक्ष्म सम्पराय 11 उपशान्त मोहनीय 12. क्षीण–मोहनीय 13. सयोगी केवली और 14. अयोगी केवली गुणस्थान[2]।**

---

1. आत्मा के ज्ञान-दर्शन-चारित्र आदि गुणों की शुद्धि-अशुद्धि और उत्कर्ष-अपकर्ष अवस्था के वर्गीकरण को 'गुणस्थान' कहते हैं।
2. कम्मविसोहिमग्गणं पडुच्च चउद्दस जीवट्ठाणा पण्णत्ता तं जहा-..... समवाओ सं. 14

## 2. लक्षण द्वार

1. **मिथ्यात्व गुणस्थान का लक्षण**–जिनेश्वर भगवान की वाणी न्यूनाधिक या विपरीत श्रद्धे या प्ररूपे, जिन–मार्ग पर दुष्ट परिणाम रखे, हिंसा में धर्म माने या प्ररूपे, कुदेव कुगुरु और कुशास्त्र पर आस्था रखे। अथवा तत्त्व–श्रद्धा के अभाव रूप जीव के ऐसे भाव को पहला–'मिथ्यात्व गुणस्थान' कहते हैं।

**फल**–कर्म रूपी डंडे से आत्मा रूपी गेंद, चार गति चौबीस दण्डक और चौरासी लाख जीव–योनियों रूपी मैदान में बारम्बार परिभ्रमण कर दुःख भोगती रहती है।

जितने जीव मोक्ष जाते हैं, अव्यवहार राशि[3] (सूक्ष्मनिगोद अर्थात् सूक्ष्म वनस्पति, बादर निगोद अर्थात् साधारण वनस्पति) से उतने ही जीव व्यवहार राशि[4] में आते हैं।[5] जब अर्द्धपुद्गल परावर्तन काल संसार परिभ्रमण शेष रहता है।

---

3. जिन जीवों ने एक बार भी निगोद (सूक्ष्म वनस्पति व साधारण वनस्पति इन दोनों के अपर्याप्त तथा पर्याप्त) अवस्था छोड़कर दूसरी जगह जन्म नहीं लिया हो, वे सभी अव्यवहार राशि के जीव हैं।
4. जिन्होंने निगोद को छोड़कर दूसरी जगह एक बार भी जन्म ग्रहण कर लिया है, वे सभी व्यवहार राशि के जीव हैं।
5. सिज्झंति जत्तिया किर, इह संववहार जीव रासिओ।
   एंति अणाइ वण्णस्सई, रासीओ तेत्तिया तम्मि।। विशेषणवती-विशेष 15, गाथा 60

तब से वह मिथ्यादृष्टि भव्य जीव शुक्ल पक्षी कहलाता है। इसको हम एक व्यावहारिक दृष्टान्त से इस प्रकार समझ सकते हैं। जैसे किसी को एक करोड़ रुपया ऋण देना था, उसने उसमें से निन्यानवें लाख निन्यानवें हजार नौ सौ साढ़े निन्यानवें रुपये (99,99,999।।) तो चुका दिये, केवल आधा रुपया देना शेष रहा। उसी प्रकार इस जीव का अर्द्ध पुद्गल परावर्तन संसार परिभ्रमण शेष रहा। अर्थात् शुक्लपक्षी हो गया। यहाँ से अनादि मिथ्यादृष्टि पहली बार सीधा चतुर्थ गुणस्थान में ही जायेगा। (शुक्लपक्षी होने के बाद जघन्य अन्तर्मुहूर्त में तथा उत्कृष्ट देशोन अर्द्धपुद्गल परावर्तन काल में समकित अवश्य प्राप्त करता है) दूसरे से लेकर आगे के सभी गुणस्थानों में जीव शुक्लपक्षी ही होता है।

2. **सास्वादन सम्यग्दृष्टि गुणस्थान का लक्षण**–उपशम सम्यक्त्वी के अनन्तानुबन्धी कषाय का उदय होने से व दर्शन मोहनीय का उपशम कायम रहने से सम्यक्त्व की आस्वाद मात्र जो अवस्था बनती है, उसे सास्वादन सम्यग्दृष्टि गुणस्थान कहते हैं। उपशम समकित के लाभ को यह बाधा पहुँचाता है, विराधना करता है, इसलिए इसे सासादन सम्यग्दृष्टि गुणस्थान भी कहते हैं। जैसे–किसी ने खीर का भोजन किया और बाद में वमन कर दिया, तो उसे कुछ गुड़चटा स्वाद रहता है। इसी प्रकार प्राप्त सम्यक्त्व को छोड़ कर मिथ्यात्व

में प्रवेश करने के पूर्व की दशा में जो अवस्था होती है, उसे 'सास्वादन'[6] गुणस्थान कहते हैं। अथवा जैसे-घंटे से गंभीर शब्द निकल चुकने के बाद उसकी रणकार (प्रतिध्वनि) रह जाती है, उसके समान, अथवा आत्मा रूपी आम्र-वृक्ष की परिणाम रूपी डाली से, मोह रूपी वायु चलने से, समकित रूपी फल टूट गया, परन्तु मिथ्यात्व रूपी पृथ्वी पर नहीं पहुँचा। वह बीच ही में हैं, तब तक के परिणामों को 'सास्वादन गुणस्थान' कहते हैं।

3. **सम्यक् मिथ्यादृष्टि (मिश्र) गुणस्थान का लक्षण**-यह गुणस्थान मिश्र मोहनीय प्रकृति के उदय से होता है। सम्यक्त्व और मिथ्यात्व से मिश्रित[7], श्रीखंड के समान मीठे और खट्टे स्वाद जैसा।

पंच संग्रह और कर्मग्रंथ में मिलने वाला नालिकेर द्वीप के मनुष्य का दृष्टान्त इस प्रकार है-जिस द्वीप में खाने के लिए सिर्फ नारियल ही होते हैं, उसे नालिकेर द्वीप कहते हैं। वहाँ के मनुष्यों ने न अन्न को देखा है, न उसके विषय में कुछ

---

6. सास्वादन सम्यग्दृष्टि गुणस्थान उपशम समकित से गिरने वाले को ही आ सकता है, अन्य को नहीं। यह एक भव में दो बार से अधिक नहीं आ सकता व अनेक भवों की अपेक्षा भी पाँच बार से अधिक नहीं आता है।
7. मिश्र मोहनीय गुणस्थान अन्तर्मुहूर्त्त से अधिक नहीं रहता। इसमें न तो नवीन आयु का बन्ध होता है और न मरण होता है। सम्यक्त्व या मिथ्यात्व को प्राप्त होने के बाद ही आयु का बन्ध या मरण होता है।

सुना ही है, अतएव उनको अन्न में रुचि नहीं होती और न द्वेष ही होता है। इसी प्रकार जब मिश्र मोहनीय कर्म का उदय रहता है, तब जीव को जैन धर्म में प्रीति नहीं होती और अप्रीति भी नहीं होती अर्थात् श्री वीतराग ने जो धर्म कहा है वही सच्चा है, इस प्रकार एकान्त श्रद्धा रूप प्रेम नहीं होता और वह धर्म झूठा है, अविश्वसनीय है इस प्रकार अरुचि रूप द्वेष भी नहीं होता। दूसरे शब्दों में सम्यक्त्व व मिथ्यात्व में अस्थिर वृत्ति होती है।

4. **अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान का लक्षण**–सात प्रकृतियों का क्षयोपशम आदि करने पर जीव की जो अवस्था होती है, उसे चौथा 'अविरत-सम्यग्दृष्टि गुणस्थान' कहते हैं। वे सात प्रकृतियाँ हैं–1. अनन्तानुबन्धी क्रोध 2. मान 3. माया 4. लोभ 5. मिथ्यात्व मोहनीय 6. मिश्र-मोहनीय 7. समकित मोहनीय। कुदेव, कुगुरु, कुधर्म, कुशास्त्र की आस्था रखना–'मिथ्यात्व मोहनीय' है। जिस कर्म के उदय से सम्यक्त्व एवं मिथ्यात्व से मिश्रित परिणाम हो अथवा अनिर्णय की स्थिति हो, उसे 'मिश्र मोहनीय' कहते हैं। जिस प्रकार कूटे हुए कोद्रव धान्य के छिलकों में मादक शक्ति पूर्ण नहीं होती, उसी प्रकार जिस कर्म के द्वारा सम्यक्त्व

गुण का पूर्ण घात तो न हों, परंतु उसमें चल[8] मल[9] अगाढ़[10] दोष उत्पन्न हों, उसे 'सम्यक्त्व मोहनीय' कहते हैं।

चौथे गुणस्थान में आया हुआ जीव जीवादिक नौ पदार्थों का जानकार होता है। द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव का जानकार होवे, नवकारसी आदि तप को उपादेय जाने, श्रद्धा करे, प्ररूपणा करे, परन्तु पालन नहीं कर सकता, क्योंकि अविरत है।

**फल**–इस गुणस्थान में सात बोलों का बन्ध नहीं हो सकता–1. नारकी 2. तिर्यंच 3. भवनपति 4. वाणव्यन्तर 5. ज्योतिषी 6. स्त्रीवेद और 7. नपुंसकवेद। यदि पहले बन्ध हो गया हो तो भोगना ही पड़ता है। जैसे श्रेणिक महाराजा को भोगना पड़ा। इस गुणस्थान से नीचे गिरने पर उक्त सात बोलों का बंध हो सकता है।

अनन्तानुबन्धी चौक, मिथ्यात्व, मिश्र व समकित मोहनीय, इन सात प्रकृतियों के क्षयोपशम आदि से बनने वाले भंग इस प्रकार हैं–[11]

**उपशम समकित–**

इसमें दर्शन मोहनीय के उपशम की नियमा है।

---

8. श्री शान्तिनाथजी शान्ति करने में, पार्श्वनाथजी परिचय देने में समर्थ हैं, इस प्रकार अनेक विषयों में चलायमान होने को 'चल दोष' कहते हैं।
9. छद्मस्थपन की तरंग से सम्यक्त्व में मलिनता आ जाने को 'मल दोष' कहते हैं।
10. यह मेरा शिष्य है, यह उनका, इत्यादि भ्रम उत्पन्न करने वाले दोष को 'अगाढ़ दोष' कहते हैं। अगाढ़ अर्थात कुछ शिथिल।
11. पुराने थोकड़ों की पुस्तकों में वर्णित भंगों का आधार नहीं मिलने से उपलब्ध कर्म साहित्य आदि के अनुसार बनने वाले भंग दिये गये हैं।

**प्रथमोपशम–**

1. (अ) चार का क्षयोपशम, 3 का उपशम (त्रिपुंज होने पर)– (गुणस्थान 4 से 7 तक, स्थिति–जघन्य, उत्कृष्ट–अन्तर्मुहूर्त्त)

   (ब) चार का क्षयोपशम 1 (मिथ्यात्व) का उपशम (त्रिपुंज नहीं होने पर) (नियमा नीचे गिरेगा) गुणस्थान–चौथा[12] स्थिति–जघन्य, उत्कृष्ट–अन्तर्मुहूर्त्त।

**द्वितीयोपशम–**

2. सातों प्रकृतियों का उपशम–(4 से 11 गुणस्थान तक, स्थिति–जघन्य, उत्कृष्ट–अन्तर्मुहूर्त्त)

3. चार की विसंयोजना, तीन का उपशम–(4 से 11 गुणस्थान तक, स्थिति–जघन्य, उत्कृष्ट–अन्तर्मुहूर्त्त)

**क्षायोपशमिक समकित–**

इसमें समकित मोहनीय के उदय (विपाकोदय) की नियमा है।

**सामान्य–**

4. छः का क्षयोपशम, एक का वेदन–(4 से 7 गुणस्थान तक, स्थिति–जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त, उत्कृष्ट 66 सागरोपम झाझेरी)

**द्वितीयोपशम प्राप्ति की प्रक्रिया–**(जो वर्तमान में क्षयोपशम समकिती हैं, किन्तु बाद में उपशम समकित प्राप्तकर उपशम श्रेणि करेंगे उनकी अपेक्षा से निम्न भंग समझना)

---

12. विशेषावश्यक भाष्य के अनुसार।

5. चार का उपशम, 2 का क्षयोपशम, 1 का वेदन-(गुणस्थान 4 से 7 तक, स्थिति-जघन्य, उत्कृष्ट-अन्तर्मुहूर्त्त)

6. 6 का उपशम, 1 का वेदन-(गुणस्थान 6, 7, स्थिति-जघन्य, उत्कृष्ट-अन्तर्मुहूर्त्त)

**उपशम**

1. 4 का क्षयोपशम 3 का उपशम (कर्म सिद्धान्त के अनुसार)
2. 4 का क्षयोपशम 1 का उपशम (भाष्य के अनुसार निश्चित गिरेगा, सीधा प्रथम गुणस्थान में)
3. 4 का उपशम 3 का उपशम (7 का उपशम)
4. 4 की विसंयोजना 3 का उपशम

**सास्वादन**

1. 4 का उदय 3 का उपशम (उपशम समकित के 1(अ) व दूसरे भंग से)
2. 4 का उदय 1 (मिथ्यात्व) का उपशम (उपशम समकित के 1(ब) भंग से)

**क्षयोपशम**

1. 6 का क्षयोपशम 1 का वेदन

**द्वितीयोपशम की प्रक्रिया**

2. 4 का उपशम 2 का क्षयोपशम 1 का वेदन
3. 6 का उपशम 1 का वेदन
4. 4 की विसंयोजना 2 का क्षयोपशम 1 का वेदन
5. 4 की विसंयोजना 2 का उपशम 1 का वेदन

**क्षायिक की प्रक्रिया**

6. 4 का क्षय 2 का क्षयोपशम 1 का वेदन
7. 5 का क्षय 1 का क्षयोपशम 1 का वेदन
8. 6 का क्षय 1 का वेदन

**क्षायिक समकित**

1. 7 का क्षय

7. 4 की विसंयोजना, 2 का क्षयोपशम, 1 का वेदन–(गुणस्थान 4 से 7 तक, स्थिति–जघन्य, उत्कृष्ट–अन्तर्मुहूर्त्त)

**नोट**–यदि जीव द्वितीयोपशम अथवा क्षायिक समकित प्राप्ति की प्रक्रिया न करे तो इस भंग की स्थिति उत्कृष्ट 66 सागरोपम झाझेरी भी हो सकती है।

8. 4 की विसंयोजना, 2 का उपशम, 1 का वेदन (गुणस्थान 6, 7, स्थिति–जघन्य, उत्कृष्ट–अन्तर्मुहूर्त्त)

**क्षायिक प्राप्ति की प्रक्रिया**–(जो वर्तमान में क्षयोपशम समकिती हैं, किन्तु बाद में क्षायिक समकित प्राप्त करेंगे, उस अपेक्षा से निम्न भंग समझना)

9. 4 का क्षय, 2 का क्षयोपशम, 1 का वेदन–(गुणस्थान 4 से 7 तक, स्थिति–जघन्य, उत्कृष्ट–अन्तर्मुहूर्त्त)

10. 5 का क्षय, 1 (मिश्र मोहनीय) का क्षयोपशम, 1 का वेदन–(गुणस्थान 4 से 7 तक, स्थिति–जघन्य, उत्कृष्ट–अन्तर्मुहूर्त्त)

11. 6 का क्षय, 1 का वेदन–(गुणस्थान 4 से 7 तक, स्थिति–जघन्य, उत्कृष्ट–अन्तर्मुहूर्त्त)[13]

---

13. इस भंग के अंतिम एक समय को क्षायिक वेदक कहते हैं।

**क्षायिक समकित–**

12. 7 का क्षय–(गुणस्थान 4 से 14 व सिद्ध, स्थिति–सादि अनन्त)

इन भंगों को निम्न चार्ट द्वारा भी सरलता से समझ सकते हैं–

**कठिन शब्दों के सामान्य अर्थ**–(विशेष जानकारी के लिए छठे कर्मग्रन्थ के परिशिष्ट की व्याख्या दृष्टव्य)

**उपशम** का अर्थ है–जिसमें सम्बन्धित कर्म प्रकृति का न तो विपाकोदय हो और न प्रदेशोदय हो, किन्तु कर्म प्रकृति सत्ता में विद्यमान रहे।

**विपाकोदय** का अर्थ है–अनुभूति में आने वाला उदय और प्रदेशोदय का अर्थ है–अनुभूति में नहीं आने वाला उदय।

**क्षयोपशम**–क्षय और उपशम इन दो शब्दों से मिलकर क्षयोपशम शब्द बनता है। क्षयोपशम चार घाती कर्मों में ही होता है। इनमें भी–

**सर्वघाती प्रकृतियों में क्षयोपशम**–जो सर्वघाती प्रकृतियाँ परिणामों की विशुद्धि से जब देशघाती में बदल जाती हैं, तब उनमें

क्षयोपशम होता है। उस क्षयोपशम में इनका मात्र प्रदेशोदय ही होता है, विपाकोदय बिल्कुल भी नहीं होता।

जैसे अनन्तानुबन्धी आदि प्रारंभ की तीन चौकड़ी कषाय, मिथ्यात्व मोहनीय तथा मिश्रमोहनीय, इन चौदह प्रकृतियों में क्षयोपशम शब्द का अर्थ है–

(A) इनके देशघाती रस वाले स्पर्धक (कर्मदलिक) जो उदयावलिका में आ चुके हैं, उनको प्रदेशोदय में लाकर समाप्त करना, यह क्षय है तथा (B) इनके जो कर्मदलिक उदयावलिका के बाहर स्थित हैं उनकी अनुभाग शक्ति को प्रतिसमय क्षीण–क्षीण करते रहना, ताकि जब वे उदय में आये तब उनका मात्र प्रदेशोदय ही हो, विपाकोदय बिल्कुल भी न हो, उसे उपशम कहते हैं।

इन दोनों अवस्थाओं (क्षय + उपशम) को मिलाकर क्षयोपशम कहा जाता है। यहाँ चतुर्थ गुणस्थान में दिये गये भंगों में सभी जगह क्षयोपशम का उपर्युक्त अर्थ ही समझना चाहिए। सामान्य रूप से यहाँ क्षयोपशम का अर्थ कहा जा सकता है कि–जिसमें मात्र प्रदेशोदय ही हो, विपाकोदय बिल्कुल भी नहीं हो।

**देशघाती प्रकृतियों में क्षयोपशम**–जो प्रकृतियाँ स्वभाव से

देशघाती हैं (समकित मोहनीय, संज्वलन चौक, नौ नवकषाय, प्रथम चार ज्ञानावरण, प्रथम तीन दर्शनावरण, पाँच अंतराय) उनमें क्षयोपशम का अर्थ इस प्रकार से समझना चाहिए–

(A) इन प्रकृतियों के उदयावलिका में आये हुए कर्म दलिकों को उदय में लाकर समाप्त करना क्षय कहलाता है तथा (B) उदयावलिका के बाहर स्थित कर्मदलिकों की अनुभाग शक्ति को कमजोर करते जाना ताकि जब वे उदय में आये तब उनका विपाकोदय अधिक तीव्र न हो, मंद रूप में रहे, उसे उपशम कहते हैं। इस प्रकार से क्षय + उपशम इन अवस्थाओं को मिलाकर क्षयोपशम कहा जाता है।

दूसरे शब्दों में इन देशघाती प्रकृतियों के क्षयोपशम में प्रदेशोदय के साथ मंद विपाकोदय भी रहता है। इसे उदयानुविद्ध क्षयोपशम भी कहा जाता है। विपाकोदय के साथ में क्षयोपशम होना उदयानुविद्ध क्षयोपशम कहलाता है।

**विसंयोजना** का अर्थ है–जिसमें किसी भी प्रकार का उदय न हो, कर्म सत्ता में भी न हो, किन्तु कारण (मिथ्यात्व) उपस्थित होने पर जिसका पुन: बन्ध व उदय हो सके अर्थात् अस्थायी क्षय। विसंयोजना मात्र अनन्तानुबन्धी चौक की ही होती है।

**प्रथमोपशम** का अर्थ है–जो उपशम समकित ग्रन्थिभेद जन्य होती है तथा जिसमें जीव उपशम श्रेणि प्राप्त नहीं कर पाता है, चाहे वह पहली, दूसरी बार ही क्यों न प्राप्त हो।

**द्वितीयोपशम** का अर्थ है–जो उपशम समकित श्रेणि सहित प्राप्त हो, चाहे वह पहली, दूसरी, तीसरी बार ही क्यों न प्राप्त हो।

**त्रिपुंज** का अर्थ है–द्वितीय स्थिति में रहे हुए मिथ्यात्व मोहनीय के कर्मों को उनके अनुभाग के आधार पर मिथ्यात्व (अशुद्ध), मिश्र (अर्द्ध शुद्ध) एवं समकित मोहनीय (विशुद्ध) के रूप में तीन टुकड़ों में विभाजित कर देना।

5. **विरताविरत (देशविरति) गुणस्थान का लक्षण**–पहले कही हुई सात प्रकृतियाँ का क्षयोपशमादि और अप्रत्याख्यानी क्रोध, मान, माया, लोभ एवं नो–कषाय[14] के क्षयोपशम से जो गुणस्थान होता है, वह पाँचवाँ विरताविरत (देशविरति) गुणस्थान है। इस गुणस्थान में आया हुआ जीव, जीवादिक

14. इस गुणस्थान में हास्यादि षट्क और वेद के उदय में कमी स्पष्टत: परिलक्षित भी होती है और कम्मपयडी आदि ग्रन्थों के अनुसार इन प्रकृतियों के देशघाती (मन्द) अनुभाग से अधिक उदय सम्भव नहीं होता है। अत: इनका क्षयोपशम कहा जाता है। इनके क्षयोपशम की भिन्नता से ही विरताविरत के असंख्यात स्थान बनते हैं।

नौ पदार्थों का जानकार होता है। नवकारसी आदि से लेकर वर्षी तप आदि जानता है, श्रद्धान करता है, प्ररूपता है और शक्ति अनुसार प्रत्याख्यान करता है। एक प्रत्याख्यान से लेकर श्रावक के बारह व्रत, ग्यारह प्रतिमाएँ तक पालन करे यावत् मारणांतिक संलेखना संथारा अनशन करे।

**फल**–इस गुणस्थान का आराधक जीव, जघन्य तीसरे भव उत्कृष्ट सात–आठ अर्थात् पन्द्रह भवों में मोक्ष में जाता है। सात भव वैमानिक देवों के और आठ भव मनुष्य के करता है।

6. **प्रमत्तसंयत गुणस्थान का लक्षण**–दर्शन सप्तक के क्षयोपशमादि से, अप्रत्याख्यानी, प्रत्याख्यानावरण, संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ तथा नो–कषाय[15] के क्षयोपशम से जो गुणस्थान हो, उसे छठा 'प्रमत्त–संयत[16] गुणस्थान' कहते हैं। इस गुणस्थान वाला नौ तत्त्व और द्रव्य–क्षेत्र–काल–भाव का जानकार होवे, नवकारसी आदि वर्षी तप जाने, श्रद्धे, प्ररूपे और पालन करे।

---

15. संज्वलन चौक एवं नो-कषाय के क्षयोपशम की भिन्नता से ही संयम के असंख्यात स्थान बनते हैं।
16. इस गुणस्थान में आते ही 'साधु' संज्ञा होती है। सतरह प्रकार का संयम पालन होता है। इसे 'सर्वविरति गुणस्थान' भी कहते हैं।

**फल**–छठे गुणस्थान का आराधक जीव जघन्य उसी भव में और उत्कृष्ट सात–आठ भवों में मोक्ष जाता है।

7. **अप्रमत्त संयत गुणस्थान का लक्षण**–पाँच प्रमादों के छोड़ने से जो गुणस्थान हो, वह 'अप्रमत्तसंयत[17] गुणस्थान' है। पाँच प्रमाद[18]–1. मद्य 2. विषय 3. कषाय 4. निद्रा और 5. विकथा। इस गुणस्थान वाला, जीवादिक नौ तत्त्वों का तथा द्रव्य–क्षेत्र–काल–भाव का जानकार होवे, नवकारसी आदि तप जाने, श्रद्धा करे, प्ररूपणा करे और फरसे।

**फल**–इस गुणस्थान का आराधक जघन्य उसी भव में, मध्यम तीसरे भव में और उत्कृष्ट सात–आठ भवों में मोक्ष जाता है।

8. **निवृत्ति बादर गुणस्थान का लक्षण**–जिस गुणस्थान में सम–समयवर्ती त्रैकालिक जीवों के परिणामों में निवृत्ति (भिन्नता) तथा बादर संज्वलन कषाय का उदय रहता है, उसे निवृत्ति बादर गुणस्थान कहते हैं।

---

17. प्रथम बार प्राप्ति के समय सातवें गुणस्थान की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की है। बाद में जघन्य स्थिति एक समय भी हो सकती है। इसमें केवल संज्वलन कषाय और नो-कषाय का मन्द उदय रह जाता है तथा धर्मध्यान की मुख्यता है।

18. मज्जविसयकसायनिद्दाविकहा।

शुक्ल ध्यान प्राप्ति, प्रतिसमय अनन्त गुणी विशुद्धि को लिये अपूर्व परिणाम होने से[19], स्थिति घात आदि पाँच अपूर्व कार्य होने से इस गुणस्थान को 'अपूर्वकरण' गुणस्थान भी कहते हैं। आठवें गुणस्थान में वर्तमान जीव चारित्र मोहनीय कर्म के उपशम या क्षपण के योग्य होने से उपशमक या क्षपक कहलाता है।

9. **अनिवृत्ति बादर गुणस्थान का लक्षण**–जिस गुणस्थान में सम–समयवर्ती त्रैकालिक जीवों के परिणामों में निवृत्ति (भिन्नता) नहीं होती तथा बादर संज्वलन कषाय का उदय रहता है, उसे अनिवृत्ति बादर गुणस्थान कहते हैं।

इस गुणस्थान में चारित्र मोहनीय कर्म का उपशमन करने वाले उपशमक तथा क्षय करने वाले क्षपक कहलाते हैं।

---

19. **पाँच अपूर्व कार्य निम्नोक्त हैं-(1) स्थिति घात**-बंधे हुए ज्ञानावरणीयादि कर्मों की बड़ी स्थिति को अपवर्तनाकरण से छोटी करना 'स्थिति घात' है। **(2) रसघात**-बंधे हुए ज्ञानावरणीयादि कर्मों के तीव्र अशुभ रस को अपवर्तनाकरण से मंद करना 'रस घात' है। **(3) गुण श्रेणि**-जिन कर्मदलिकों का स्थिति घात किया जाता है, उनको प्रथम अन्तर्मुहूर्त्त में असंख्यात गुणित क्रम से स्थापित कर देना 'गुणश्रेणि' कहलाता है। **(4) गुण संक्रमण**-पहले बांधी हुई अशुभ प्रकृतियों को वर्तमान में बंधने वाली शुभ प्रकृतियों के रूप में असंख्यात गुणित क्रम से परिवर्तित करना 'गुण संक्रमण' कहलाता है। **(5) अपूर्व स्थिति बंध**-पहले की अपेक्षा अत्यन्त अल्प स्थिति के कर्मों को बाँधना 'अपूर्व स्थिति बंध' कहलाता है। (कर्मग्रन्थ भाग 2, गाथा 2 का विवेचन)

10. **सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थान का लक्षण**–जिस गुणस्थान में मात्र संज्वलन लोभ कषाय का सूक्ष्म रूप से उदय (विपाकोदय) रहता है, उसे सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थान कहते हैं।

इस गुणस्थान में मात्र संज्वलन लोभ कषाय का उपशमन अथवा क्षय किया जाता है, क्योंकि इस गुणस्थान में संज्वलन लोभ के सिवाय अन्य चारित्र मोहनीय कर्म की ऐसी कोई प्रकृति ही नहीं है, जिसका उपशमन या क्षय न हुआ हो। संज्वलन लोभ का उपशमन करने वाले उपशमक तथा क्षय करने वाले क्षपक कहलाते हैं।

11. **उपशान्त मोहनीय गुणस्थान का लक्षण**–जिस गुणस्थान में मोहनीय कर्म की सभी प्रकृतियों का उपशम रहता है, उसे उपशान्त मोहनीय गुणस्थान कहते हैं। यदि क्षायिक समकिती हो तो दर्शन सप्तक का क्षय व मोहनीय कर्म की शेष प्रकृतियों का उपशम रहता है। इस गुणस्थान में उपशांत कषाय, यथाख्यात चारित्र व वीतरागदशा की प्राप्ति होती है। इस गुणस्थान को उपशम श्रेणि करने वाला ही प्राप्त करता है, जो पडिवाई होती है।

**उपशम श्रेणि के आरम्भ का क्रम संक्षेप में इस प्रकार है**–चौथे, पाँचवें, छठे या सातवें गुणस्थान में से किसी भी

गुणस्थान में वर्तमान जीव, पहले चार अनंतानुबंधी कषायों का उपशम या विसंयोजना करता है और पीछे छठे या सातवें गुणस्थान में दर्शन मोहनीय त्रिक का उपशम करके उपशम समकित प्राप्त करता है अथवा पूर्व इसी भव में चौथे, पाँचवें, छठे या सातवें गुणस्थान में से किसी भी गुणस्थान में जीव दर्शन सप्तक का क्षय करके क्षायिक समकित प्राप्त करता है। इसके बाद वह जीव छठे तथा सातवें गुणस्थान में सैकड़ों बार आता और जाता है। फिर चारित्र मोहनीय की उपशमना के लिए तीन करण करता है।[20] सातवें गुणस्थान में यथाप्रवृत्तकरण करके अपूर्वकरण के साथ आठवें गुणस्थान को प्राप्त करता है। फिर अनिवृत्तिकरण के साथ नवमें गुणस्थान को प्राप्त करता है। दर्शन सप्तक की प्रकृतियों का क्षय या उपशम तो पूर्व में ही हो चुका है–इस गुणस्थान में संज्वलन लोभ को छोड़ 20 प्रकृतियों का उपशमन कर संज्वलन लोभ की सूक्ष्म किट्टी (कूट–कूट कर पतला करना) कर ली जाती है। वे बीस प्रकृतियाँ इस प्रकार हैं–1–8 अप्रत्याख्यानी व

20. समकितादि प्राप्ति के पूर्व होने वाले यथाप्रवृत्तकरण, अपूर्वकरण व अनिवृत्तिकरण से भिन्न है।

प्रत्याख्यानावरणीय चौक, 9-14 हास्यादिकषट्क (हास्य, रति, अरति, भय, शोक, जुगुप्सा) 15-17 तीनों वेद, 18-20 संज्वलन क्रोध, मान, माया इस प्रक्रिया के पश्चात् जीव दसवें गुणस्थान में आता है।

पूर्व कही हुई सत्ताईस और एक संज्वलन लोभ-इन अट्ठाईस प्रकृतियों का उपशम (7 का क्षय या उपशम, शेष 21 का उपशम) करने से जीव को ग्यारहवाँ गुणस्थान प्राप्त होता है। ग्यारहवें गुणस्थान में काल करे तो अनुत्तर विमान में जाता है[21] व उत्कृष्ट 33 सागरोपम की ही स्थिति पाता है। ग्यारहवें गुणस्थान की स्थिति पूरी होने से ऊपर के गुणस्थान में नहीं जाकर नीचे गिर जाता है[22] व उपशम हुए संज्वलन लोभ का उदय हो जाता है। जैसे बुझा दिये जाने पर कोयले में वर्तमान में अग्नि नहीं होते हुए भी निमित्त प्राप्त करके पुनः जल उठता है या जैसे कोठरी में कोठरी और उस कोठरी में भी फिर कोठरी होने से आगे का रास्ता बन्द हो

---

21. श्रेणि में काल करने वाला जीव अनुत्तर विमान में ही जाता है।
22. उपशम श्रेणि करने वाला जीव चढ़ते या गिरते काल तो कर सकता है, पर श्रेणि चढ़ते 11वें गुणस्थान के पहले नहीं गिरता है।

जाता है, वहाँ से उसे वापस लौटना ही पड़ता है। इसी प्रकार ग्यारहवें गुणस्थान से वापस लौटना पड़ता है। लौटकर जीव दसवें गुणस्थान में, नौवें गुणस्थान में यावत् कोई पहले गुणस्थान में भी आ सकता है[23] फिर कोई उसी भव में दूसरी बार भी उपशम श्रेणि कर सकता है। किन्तु क्षपक श्रेणि नहीं कर सकता।

12. **क्षीण मोहनीय गुणस्थान का लक्षण**–मोहनीय कर्म की सभी प्रकृतियों का क्षय होने से जिस गुणस्थान की प्राप्ति होती है, उसे क्षीण मोहनीय गुणस्थान कहते हैं। इस गुणस्थानवर्ती जीव के मोहनीय कर्म का पूर्णत: क्षय हो जाने से क्षीण कषायी–यथाख्यात चारित्र एवं वीतराग–दशा प्राप्त होती है तथा शेष घाती कर्मों के सद्भाव से छद्मस्थता रहती है। इस गुणस्थान को क्षपक श्रेणि करने वाला ही प्राप्त करता है। **क्षपक श्रेणि का क्रम संक्षेप में इस प्रकार है–**

चौथे, पाँचवें, छट्ठे या सातवें गुणस्थान में से किसी भी गुणस्थान में इस भव में अथवा पूर्व भव में सबसे पहले

23. जिस भव में उपशम श्रेणि होती है, उस भव में क्षपक श्रेणि नहीं करता-भगवती सूत्र शतक 9 उद्देशक 31. (कर्म-ग्रन्थ की मान्यता के अनुसार उस भव में क्षपक श्रेणि भी सम्भव है)

अनन्तानुबन्धी चौक व दर्शनमोहनीय त्रिक इन सात कर्म प्रकृतियों (दर्शन सप्तक) का क्षय करके क्षायिक समकित प्राप्त करता है। फिर चारित्र मोहनीय की क्षपणा के लिए तीन करण करता है। सातवें गुणस्थान में यथाप्रवृत्तकरण करके अपूर्वकरण के साथ आठवें गुणस्थान को प्राप्त करता है। फिर अनिवृत्तिकरण के साथ नवें गुणस्थान को प्राप्त करता है। ऊपर वर्णित 20 प्रकृतियों का क्रमशः क्षय नवें गुणस्थान में करके दसवें गुणस्थान में आता है व संज्वलन लोभ का क्षय कर ग्यारहवें गुणस्थान को छोड़कर सीधा बारहवें गुणस्थान में आता है। बारहवें गुणस्थान के अन्तिम समय में[24] ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, अन्तराय इन तीन कर्मों का चरम वेदन करके तेरहवें गुणस्थान के प्रथम समय में उनकी निर्जरा करने के फलस्वरूप सर्वज्ञ-सर्वदर्शी हो जाता है।

13. **सयोगी केवली गुणस्थान का लक्षण**–ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अन्तराय इन तीन शेष घाती कर्मों का

24. क्षपक श्रेणि अपडिवाई होने से क्षपक श्रेणि से जीव गिरता ही नहीं है। अन्तर्मुहूर्त्त में ही केवली हो जाता है तथा उसी भव में मोक्ष प्राप्त करता है।

क्षय होने से जिस गुणस्थान में केवलज्ञान-केवलदर्शन प्राप्त हो और जो योग सहित हो, उसे सयोगी केवली गुणस्थान कहते हैं। इस गुणस्थान में दस बोल पाये जाते हैं[25] 1. क्षायिक समकित 2. शुक्ल ध्यान 3. यथाख्यात चारित्र 4. केवलज्ञान 5. केवल दर्शन 6. अनंतदान लब्धि 7. अनंतलाभ लब्धि 8. अनंतभोग लब्धि 9. अनंतउपभोग लब्धि 10. अनंतवीर्य लब्धि[26]।

तेरहवें गुणस्थान में जीव मन, वचन और काया के योगों का निरोध (रोक) करके चौदहवें गुणस्थान में जाता है।

14. **अयोगी केवली गुणस्थान का लक्षण**–जिस गुणस्थान में योग प्रवृत्ति का सम्पूर्ण निरोध हो जाने से अयोग अवस्था की प्राप्ति होती है, उसे अयोगी केवली गुणस्थान कहते हैं।

---

25. ये दस बोल चार घाती कर्मों के क्षय होने से ही प्राप्त होते हैं। पाँच प्रकार की लब्धि-अन्तराय कर्म के क्षय से, केवलज्ञान-ज्ञानावरणीय के क्षय से, केवलदर्शन-दर्शनावरणीय के क्षय से और शेष मोहनीय के क्षय से प्राप्त होते हैं।

26. उपर्युक्त दस बोलों में से पहला बोल चौथे से सातवें गुणस्थान में से किसी भी गुणस्थान में, दूसरा बोल आठवें गुणस्थान में, तीसरा बोल बारहवें गुणस्थान में व शेष बोल तेरहवें गुणस्थान में प्राप्त होते हैं।

इस गुणस्थान में पाँच लघु अक्षर[27] के मध्यम स्वर से उच्चारण जितनी स्थिति में रहकर 1. वेदनीय 2. आयुष्य 3. नाम और 4. गोत्र ये चार अघाती कर्मों का क्षय करके अफुसमाण (स्पर्श न करते हुए) गति से एक समय की अविग्रह (बिना मोड़ वाली) गति से औदारिक, तैजस और कार्मण शरीर को छोड़कर साकार उपयोग से सिद्ध गति को प्राप्त होता है। सिद्ध गति में जन्म नहीं, मरण नहीं, जरा नहीं, रोग नहीं, शोक नहीं, दुःख नहीं, दारिद्र नहीं, मोह नहीं, माया नहीं, कर्म नहीं, काया नहीं, चाकर नहीं, ठाकर नहीं, भूख नहीं, तृषा नहीं, ज्योति में ज्योति विराजमान है[28]। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अव्याबाध सुख (निराबाध), वीतरागता, अक्षय स्थिति, अमूर्तिक, अगुरु-लघु और अनन्त आत्म-सामर्थ्य सहित विराजमान होते हैं।

## 3. स्थिति द्वार

पहले गुणस्थान के तीन भंग हैं-1. अनादि-अपर्यवसित[29]-

---

27. अ, इ, उ, ऋ, लृ।
28. लोक के अग्रभाग पर समश्रेणि में (सीध में) रहे हुए सिद्ध भगवन्तों के आत्म-प्रदेशों द्वारा अवगाहित क्षेत्र में स्थित हो जाते हैं।
29. यह भंग अभव्य जीव की अपेक्षा से है, क्योंकि वे अनादिकाल से मिथ्यात्वी हैं और सदैव मिथ्यात्वी ही रहेंगे।

जिसकी आदि भी नहीं और अन्त भी नहीं, 2. अनादि-सपर्यवसित[30]- जिसकी आदि नहीं, किन्तु अन्त है, 3. सादि-सपर्यवसित[31]- जिसकी आदि भी है और अन्त भी है। तीसरे भंग की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट देशोन अर्द्धपुद्गल परावर्तन की है।

दूसरे गुणस्थान की स्थिति जघन्य एक समय[32] उत्कृष्ट छह आवलिका की है।

तीसरे और बारहवें गुणस्थान की स्थिति जघन्य उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त की है।

चौथे गुणस्थान की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट तेतीस सागर[33] झाझेरी है।

पाँचवें और तेरहवें गुणस्थान की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट देशोन करोड़ पूर्व की है।

---

30. यह अनादि मिथ्यादृष्टि भव्य जीव की अपेक्षा से है।
31. यह तीसरा भंग प्रतिपाति सम्यक्त्वी की अपेक्षा से हैं, जो सम्यक्त्व को प्राप्त करके फिर मिथ्यात्व में आया हो।
32. एक समय की जघन्य स्थिति दूसरे गुणस्थान को छोड़कर शेष सभी गुणस्थानों में काल करने (मरण) की अपेक्षा से समझनी चाहिए। दूसरे गुणस्थान की जघन्य स्थिति नीचे गिरने (मिथ्यात्व में आने) की अपेक्षा समझनी चाहिए।
33. पंच सग्रह भाग-2 गाथा-43 में चौथें गुणस्थान की स्थिति साधिक 33 सागरोपम बताई है, यही उचित प्रतीत होती है।

छठे, सातवें गुणस्थान की जघन्य स्थिति एक समय की, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त[34] की है। (छठा, सातवाँ गुणस्थान झूले के समान आता जाता रहता है। इन दोनों गुणस्थानों की अलग-अलग स्थिति तो अन्तर्मुहूर्त्त ही है, परन्तु दोनों की मिलाकर उत्कृष्ट स्थिति देशोन करोड़ पूर्व की होती है।)[35]

आठवें, नौवें, दसवें और ग्यारहवें गुणस्थान की स्थिति जघन्य एक समय उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त की है।

चौदहवें गुणस्थान की स्थिति मध्यम रीति से पाँच लघु अक्षर के उच्चारण करने में जितना काल लगे उतनी है।

## 4. क्रिया द्वार

पच्चीस क्रियाओं के नाम-**1. काइया 2. अहिगरणिया 3. पाउसिया 4. पारियावणिया 5. पाणाइवाइया 6. आरम्भिया 7. पारिग्गहिया 8. मायावत्तिया 9. अपच्चक्खाण किरिया 10. मिच्छादंसणवत्तिया 11. दिट्ठिया 12. पुट्ठिया 13. पाडुच्चिया 14. सामंतोवणिया 15. नेसत्थिया 16. साहत्थिया**

34. पंचसंग्रह भाग-2 गाथा-44 में प्रमत्त, अप्रमत्त दोनों गुणस्थान की उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की बतलायी है।

35. अभिधान राजेन्द्र कोष, पंचसंग्रह।

**17. आणवणिया 18. वेदारणिया 19. अणाभोगवत्तिया 20. अणवकंखवत्तिया 21. पओइया 22. सामुदाणिया 23. पेज्जवत्तिया 24. दोसवत्तिया और 25. ईरियावहिया।**

पहले, दूसरे और तीसरे गुणस्थान में ईरियावहिया के सिवाय चौबीस[36] क्रियाएँ पाई जाती हैं। चौथे में मिथ्यात्व को भी छोड़कर तेईस क्रियाएँ पाई जाती हैं। पाँचवें में अविरति को छोड़कर बाईस क्रियाएँ हैं। छठे गुणस्थान में[37] पारिग्गहिया को छोड़कर 21 क्रियाएँ पायी जाती हैं। सातवें से नवमें गुणस्थान तक काइया, अहिगरणिया, पाउसिया, पारियावणिया, पाणाइवाइया और आरम्भिया ये छह क्रियाएँ भी छोड़कर शेष 15 क्रियाएँ पाई जाती हैं। दशवें गुणस्थान

---

36. भगवती सूत्र शतक 30वें (समवसरण) में विकलेन्द्रियों में सास्वादन गुणस्थान होते हुए भी क्रियावादी समवसरण नहीं माना है, दूसरे गुणस्थान में अनन्तानुबन्धी कषाय का उदय होने से, मिथ्यात्वाभिमुख होने से एवं हीयमान परिणाम होने से सास्वादन समकित होने पर भी मिथ्यात्व की क्रिया लगना प्रज्ञापना सूत्र पद 17 के पहले उद्देशक के सूत्र 1139-40 में बताया है। इसी प्रकार पद 22 में भी विकलेन्द्रियों में नियम से मिथ्यात्व की क्रिया बतलाई है। अतः इन पाठों से ऐसा प्रतीत होता है कि दूसरे गुणस्थान में मिथ्यात्व की क्रिया लगना ही अधिक संभव लगता है। तीसरे गुणस्थान में मिश्र परिणाम होते हैं। अतः इसमें जो मिथ्यात्व का अंश है, उसकी अपेक्षा से मिथ्यात्व की क्रिया बतलाई है।
37. कायिकी क्रिया में अनुपरत कायिकी चौथे गुणस्थान तक और दुष्प्रयुक्त कायिकी क्रिया छठे गुणस्थान तक लगती है। इसके बाद कायिकी क्रिया नहीं लगती।

में (दोसवत्तिया) द्वेषवत्तिया[38] छोड़कर शेष 14 क्रियाएँ पाई जाती हैं। ग्यारहवें, बारहवें और तेरहवें में एक ईरियावहिया क्रिया पाई जाती है। चौदहवें गुणस्थान में एक भी क्रिया नहीं है।

**ज्ञातव्य**–क्रिया द्वार में मिथ्यात्व मोहनीय का बंध कराने वाली अनन्तानुबंधी कषाय को भी उपचार से (कार्य में कारण का समावेश) मिथ्यात्व मान लिया गया है। प्रज्ञापना सूत्र पद–22 और भगवती सूत्र शतक 8 उद्देशक 4 आदि में एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय में मिथ्यात्व की क्रिया नियम से मानी गई है। विकलेन्द्रिय में दूसरा गुणस्थान भी हो सकता है, अतः हेतु और कारण से भी क्रिया द्वार में और अधिक विशदता के साथ पहले, दूसरे, तीसरे गुणस्थान में मिथ्यात्व की क्रिया मानी गई है।

दूसरे गुणस्थान से जीव गिरकर मिथ्यात्व में ही आता है। मिथ्यात्व के अभिमुख होने से दूसरे गुणस्थान की सास्वादन समकित और ज्ञान दशा को गौण करके उसे मिथ्यात्व की क्रिया वाला माना गया है। भगवती सूत्र के 30वें शतक समवशरण के अधिकार में भी दूसरे गुणस्थान में (विकलेन्द्रिय की अपेक्षा) समकित और ज्ञान

---

38. दशवें गुणस्थान में क्रोध और मान का लेशमात्र भी उदय नहीं होने के कारण द्वेषवत्तिया क्रिया नहीं लेना उपयुक्त है।

में भी अक्रियावादी और अज्ञानवादी समवशरण ही माना है, क्रियावादी समवशरण नहीं माना गया है।

## 5. सत्ता द्वार[39]

पहले गुणस्थान से ग्यारहवें गुणस्थान तक आठों ही कर्मों की सत्ता है। बारहवें गुणस्थान में सात[40] कर्मों की सत्ता है और तेरहवें तथा चौदहवें गुणस्थान में चार अघाती कर्मों की सत्ता रहती है।

## 6. बन्ध द्वार[41]

तीसरे गुणस्थान को छोड़कर पहले से सातवें गुणस्थान तक सात तथा आठ कर्मों का बन्ध होता है (जब सात कर्मों का बन्ध होता है तब आयु-कर्म नहीं बँधता) तीसरे, आठवें और नौवें गुणस्थान में आयु-कर्म के सिवाय सात कर्मों का बन्ध होता है। दसवें गुणस्थान में मोहनीय और आयु के सिवाय छह कर्मों का बन्ध होता है। ग्यारहवें, बारहवें और तेरहवें गुणस्थान में एक वेदनीय कर्म (साता वेदनीय) का ही बन्ध होता है। चौदहवें गुणस्थान में बन्ध नहीं होता।

---

39. आत्मा के साथ कर्मों का लगा रहना 'सत्ता' है।
40. क्योंकि बारहवें गुणस्थान में मोहनीय-कर्म का अभाव हो जाता है।
41. आत्मा के साथ कर्मों का क्षीर-नीर के समान एकमेक हो जाना।

## 7. उदय द्वार[42]

पहले गुणस्थान से दसवें गुणस्थान तक आठों कर्मों का उदय होता है। ग्यारहवें तथा बारहवें गुणस्थान में मोहनीय कर्म के सिवाय सात कर्मों का उदय होता है। तेरहवें तथा चौदहवें गुणस्थान में चार अघाति कर्मों का उदय होता है।

## 8. उदीरणा द्वार[43]

पहले से लेकर छठे गुणस्थान तक सात-आठ-छह[44] कर्मों की उदीरणा होती है (सात की उदीरणा हो, तो आयु कर्म की नहीं होती तथा छह की उदीरणा हो तो आयु व वेदनीय दोनों को छोड़ना) सातवें, आठवें और नौवें गुणस्थान में छह कर्मों की उदीरणा (आयु और वेदनीय छोड़कर) दसवें गुणस्थान में छह या पाँच कर्मों की उदीरणा (छह की हो तो पूर्वोक्त दो छोड़ना और पाँच की हो तो मोहनीय भी छोड़ देना) ग्यारहवें गुणस्थान में पाँच कर्मों की उदीरणा, बारहवें गुणस्थान में पूर्वोक्त पाँच कर्मों की या

---

42. उदय समय (काल) को प्राप्त कर्म परमाणुओं के अनुभव करने को 'उदय' कहते हैं।
43. उदयावलिका के बाहर स्थित कर्म परमाणुओं को कषाय सहित या कषाय रहित योग संज्ञा वाले वीर्य विशेष के द्वारा उदयावली में लाकर उनका उदय प्राप्त कर्म परमाणुओं के साथ अनुभव करना 'उदीरणा' कहलाता है।
44. भगवती सूत्र शतक 11 उद्देशक 1, शतक 25 उद्देशक 6 एवं शतक 35 से 40 तक से स्पष्ट होता है कि प्रमादी जीवों के 6 कर्मों की उदीरणा भी होती है। पुलाक पुलाकपने में काल नहीं करता, लेकिन आयु की अनुदीरणा बताई है।

नाम और गोत्र इन दो कर्मों की उदीरणा होती हैं। तेरहवें गुणस्थान में पूर्वोक्त दो की उदीरणा होती है।[45] चौदहवें गुणस्थान में उदीरणा नहीं होती।

## 9. निर्जरा द्वार[46]

पहले गुणस्थान से दसवें गुणस्थान तक आठों कर्मों की निर्जरा होती है। ग्यारहवें तथा बारहवें गुणस्थान में मोहनीय कर्म के सिवाय सात कर्मों की निर्जरा होती है और तेरहवें तथा चौदहवें गुणस्थान में चार अघाति कर्मों की निर्जरा होती है।

## 10. भाव द्वार

भाव पाँच होते हैं–**1. औदयिक[47] भाव 2. औपशमिक[48]**

---

अप्रमत्त अवस्था आने से पूर्व भी आयुष्य व वेदनीय की उदीरणा रुकना उपर्युक्त पाठों से स्पष्ट हो जाने से तीसरे गुणस्थान में भी इनकी अनुदीरणा मानने में बाधा नहीं लगती है। दसवे गुण. में क्षपक श्रेणि वालों के जब मोहनीय की स्थिति एक आवलिका मात्र ही शेष रहे तब पाँच कर्मों की उदीरण होती है। उपशम श्रेणि वालों के तो दसवें गुणस्थान के अंतिम समय तक छह कर्मों की उदीरणा होती रहती है। इसी प्रकार बारहवें गुणस्थान में भी ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अन्तराय इन तीन कर्मों की स्थिति जब एक आवलिका मात्र ही शेष रहती है तब इन तीनों की उदीरणा नहीं होती। नाम व गोत्र इन दो कर्मों की ही उदीरण होती है।

45. कर्मग्रन्थ भाग-6, सप्ततिका प्रकरण-टीका पृष्ठ 243 में सयोगी केवली गुणस्थान के पूरे काल में नाम व गोत्र, इन दो कर्मों की उदीरणा बतलायी हैं।
46. कर्मों के अंश का आत्मा से पृथक् हो जाना 'निर्जरा' है।
47. कर्मों के उदय से होने वाला भाव, जैसे-क्रोध आदि।
48. कर्मों के उपशम से होने वाला भाव, जैसे-उपशम समकित, उपशम चारित्र।

**भाव 3. क्षायिक[49] भाव 4. क्षायोपशमिक[50] भाव और 5. पारिणामिक[51] भाव।**

पहले, दूसरे और तीसरे गुणस्थान में–औदयिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिक–ये तीन भाव होते हैं। चौथे से ग्यारहवें गुणस्थान तक उपशम श्रेणि वाले में पाँचों भाव होते हैं।[52] चौथे से बारहवें गुणस्थान तक क्षपक–श्रेणि वाले में औपशमिक छोड़कर शेष चारों भाव पाये जाते हैं। तेरहवें और चौदहवें गुणस्थान में औदयिक, क्षायिक और पारिणामिक भाव–ये तीन भाव होते हैं तथा सिद्धों में क्षायिक और पारिणामिक–ये दो भाव होते हैं।

## 11. कारण द्वार

बन्ध के कारण पाँच होते हैं–**1. मिथ्यात्व 2. अविरति 3. प्रमाद 4. कषाय और 5. योग।**

पहले और तीसरे गुणस्थान में पाँचों ही कारण होते हैं। दूसरे और चौथे गुणस्थान में मिथ्यात्व के सिवाय चार कारण होते हैं। पाँचवें और छठे गुणस्थान में मिथ्यात्व तथा अविरति के सिवाय तीन

---

49. कर्मों के क्षय से होने वाला भाव, जैसे-क्षायिक समकित, केवलज्ञान।
50. कर्मों के क्षयोपशम से होने वाला भाव, जैसे-मतिज्ञान, मतिअज्ञान। क्षयोपशम शब्द का विस्तृत विवेचन पेज नं. 17 पर देखें।
51. स्वभाव से ही रहने वाला भाव, जैसे-जीवत्व, भव्यत्व, अभव्यत्व।
52. जब क्षायिक समकित हो तथा उपशम श्रेणि करे तो पाँचों भाव होते हैं।

कारण होते हैं। सातवें से दसवें गुणस्थान तक कषाय और योग– ये दो कारण होते हैं। ग्यारहवें, बारहवें तथा तेरहवें गुणस्थान में मात्र योग ही कारण होता है। चौदहवें गुणस्थान में कोई कारण नहीं हैं, वहाँ कर्म का बन्ध ही नहीं होता।

**ज्ञातव्य**–कारण द्वार में दर्शन मोहनीय के सर्वघाती अंश वाली मिथ्यात्व मोहनीय और मिश्रमोहनीय को भी मिथ्यात्व के नाम से बतला करके संकुचित अर्थ को कुछ विस्तार (शुद्ध के साथ कुछ अशुद्ध) प्रदान किया गया है। इसमें मुख्यता अज्ञान की रही है, क्योंकि पहले व तीसरे गुणस्थान में सम्यग्ज्ञान नहीं हो सकता। इसी अपेक्षा से उत्तराध्ययन सूत्र के 32/2 में भी कहा है–अन्नाण मोहस्स विवज्जणा य।

अत: कारण द्वार में पहले और तीसरे गुणस्थान में मिथ्यात्व का कारण माना गया है।

## 12. परीषह द्वार

बाईस परीषहों के नाम–**1. क्षुधा 2. तृषा 3. शीत 4. उष्ण 5. दंशमशक 6. अचेल 7. अरति 8. स्त्री 9. चर्या 10. निषद्या (बैठना) 11. शय्या 12. आक्रोश 13. वध 14. याचना 15. अलाभ 16. रोग 17. तृणस्पर्श 18. जल (मैल)**

**19. सत्कार-पुरस्कार 20. प्रज्ञा 21. अज्ञान और 22. दर्शन परीषह।**

चार कर्मों के उदय से बाईस परीषह होते हैं-ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से प्रज्ञा और अज्ञान-ये दो परीषह होते हैं। वेदनीय कर्म के उदय से ग्यारह (क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण, दंशमशक, चर्या, शय्या, वध, रोग, तृणस्पर्श और जल-मैल) परीषह होते हैं। मोहनीय कर्म के उदय से आठ परीषह होते हैं। (दर्शन-मोहनीय के उदय से एक 'दर्शनपरीषह' होता है और चारित्र-मोहनीय के उदय से सात-अचेल, अरति, स्त्री, निषद्या (बैठना), आक्रोश, याचना और सत्कार-पुरस्कार परीषह होते हैं) अन्तराय कर्म के उदय से एक अलाभ परीषह होता है।

पहले से तीसरे गुणस्थान तक मार्गस्थ नहीं होने के कारण परीषह नहीं माने जाते हैं। चौथे गुणस्थान में अविरति परिणाम होने के कारण दर्शन परीषह के सिवाय शेष परीषह संभव नहीं हैं[53]। पाँचवें गुणस्थान में श्रमण भूत प्रतिमा आदि की अपेक्षा से बाईस परीषह

---

53. तत्त्वार्थ सूत्र के नवमें अध्याय के आठवें सूत्र में बताया है-
"मार्गाऽच्यवन निर्जरार्थं परिसोढव्याः परीषहाः ।।8।।
अर्थात् मार्ग से च्युत नहीं होने और कर्मों की निर्जरा के लिए जो सहन करने योग्य हैं, वे परीषह हैं। इसलिए पहले तीन गुणस्थानों में परीषह नहीं मान कर दुःख कहना व चौथे गुणस्थान में अविरति सम्यग्दृष्टि होने के कारण मात्र दर्शन परीषह मानना उचित लगता है।

हो सकते हैं। छठे व सातवें गुणस्थान में 22 परीषह होते हैं। जिनमें से एक समय में एक जीव अधिक से अधिक 20 परीषह वेदता है, दो नहीं वेदता। क्योंकि शीत परीषह हो तो उष्ण नहीं होता और उष्ण हो तो शीत नहीं होता तथा चर्या परीषह हो तो निषद्या नहीं होता और निषद्या हो तो चर्या नहीं होता। आठवें गुणस्थान में दर्शन परीषह को छोड़कर 21 परीषह[54] होते हैं जिनमें से एक समय में एक जीव अधिक से अधिक 19 परीषह वेदता है (शीत, उष्ण में से एक तथा चर्या, निषद्या[55] में से एक) नौवें गुणस्थान में अचेल, अरति व निषद्या को छोड़कर शेष 18 परीषह होते हैं, जिनमें से एक समय में एक जीव अधिक से अधिक 16 परीषह वेदता है (शीत, उष्ण में से एक तथा चर्या, शय्या में से एक) दसवें, ग्यारहवें और बारहवें गुणस्थान में मोहनीय कर्म के आठ परीषह छोड़कर शेष चौदह परीषह होते हैं। उनमें से एक समय में एक जीव अधिक से अधिक 12 परीषह वेदता है, दो नहीं वेदता। क्योकि शीत हो तो उष्ण नहीं, उष्ण हो तो शीत नहीं, चर्या हो तो शय्या नहीं, शय्या हो तो चर्या नहीं। तेरहवें और चौदहवें गुणस्थान में वेदनीय कर्म से होने वाले ग्यारह परीषह उत्पन्न होते हैं, जिनमें से एक साथ अधिक से अधिक नौ परीषह वेदते हैं, पूर्वोक्त रीति से दो नहीं होते।

---

54. क्षयोपशम समकित नहीं होने से दर्शन परीषह छोड़ा गया है।
55. भयमोहनीय का उदय आठवें गुणस्थान तक होने से अचेल, अरति व निषद्या परीषह आठवें गुणस्थान तक माने गये हैं, क्योंकि इन तीनों का भय मोहनीय से अधिक सम्बन्ध है।

**नोट :** किन्हीं आचार्यों के मत से नौवें गुणस्थान तक बाईस परीषह माने जाते हैं किन्तु कर्म प्रकृतियों का उदय देखते हुए सातवें गुणस्थान तक बाईस परीषह होते हैं। आठवें गुणस्थान में दर्शन परीषह को छोड़कर इक्कीस परीषह होते हैं। नौवें गुणस्थान में हास्यादिक षट्क का उदय नहीं होने से अचेल, अरति और निषद्या परीषह को छोड़कर शेष 18 परीषह होते हैं।

**एक समय में 20 परीषह का वेदन संबंधी ज्ञातव्य–** तत्त्वार्थ सूत्र में एक समय में अधिकतम 19 परीषह का कथन है, जबकि भगवती सूत्र शतक 8 उद्देशक 8 में एक समय में 20 परीषह के वेदन का उल्लेख मिलता है। आगमिक प्रमाण की प्राथमिकता से हमें भी थोकड़े में एक समय में 20 परीषह वेदन करने का तथ्य इस रूप में समझना चाहिये–

अनिवृत्ति बादर गुणस्थान (9वाँ) के पूर्व तक अर्थात् 8वें गुणस्थान तक चलते हुए भी शय्या की विपरीतता की पीड़ा अनुभूति में रह सकती है तथा विहारादि करने के पश्चात् एक स्थान पर बैठने पर शय्या की प्रतिकूलता के साथ चर्या

के कारण हुई वेदना की अनुभूति भी रह सकती है। परंतु शय्या की विपरीतता में उस स्थान पर भय मोहनीय कर्म के कारण से लगने वाला निषद्या परीषह नहीं रह सकता। यदि भय मोहनीय के उदय में एकाग्रता से बैठे हुए डर लग रहा है और उस समय थकान आदि की पीड़ा भी महसूस हो रही हो तो चर्या और निषद्या परीषह साथ में रह सकते हैं, किंतु शय्या परीषह नहीं रह सकता।

## 13. आत्मा द्वार

आठ आत्माओं के नाम–**1. द्रव्य आत्मा 2. कषाय आत्मा 3. योग आत्मा 4. उपयोग आत्मा 5. ज्ञान आत्मा 6. दर्शन आत्मा 7. चारित्र आत्मा और 8. वीर्य आत्मा।**

पहले और तीसरे गुणस्थान में ज्ञान और चारित्र आत्मा के सिवाय छह आत्माएँ पाई जाती हैं। दूसरे, चौथे और पाँचवें गुणस्थान में चारित्र आत्मा के सिवाय सात आत्माएँ होती हैं। छठे गुणस्थान से लेकर दसवें गुणस्थान तक आठ आत्मा और ग्यारहवें से तेरहवें तक कषाय आत्मा के सिवाय सात आत्माएँ होती हैं। चौदहवें गुणस्थान में कषाय आत्मा और योग आत्मा के सिवाय छह आत्माएँ होती हैं। सिद्ध भगवान में ज्ञान, दर्शन, द्रव्य और उपयोग–ये चार आत्माएँ होती हैं।

## 14. जीव भेद द्वार

पहले गुणस्थान में जीव के चौदह ही भेद पाये जाते हैं। दूसरे गुणस्थान में जीव के छह भेद पाये जाते हैं-बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौरेन्द्रिय और असंज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय, इन का अपर्याप्त, संज्ञी पंचेन्द्रिय का अपर्याप्त और पर्याप्त। तीसरे गुणस्थान में जीव का एक ही भेद पाया जाता है-संज्ञी का पर्याप्त। चौथे गुणस्थान में संज्ञी का अपर्याप्त और पर्याप्त, ये दो भेद पाये जाते हैं। पाँचवें से लेकर चौदहवें गुणस्थान तक जीव का एक ही भेद-संज्ञी का पर्याप्त पाया जाता है।

## 15. गुणस्थान द्वार

प्रत्येक गुणस्थान अपने-अपने गुण से संयुक्त होता है। पहले गुणस्थान से चौथे गुणस्थान तक आठ बोल पाये जाते हैं-1. असंयत 2. अप्रत्याख्यानी 3. अविरत 4. असंवृत 5. अपण्डित 6. अजागृत 7. अधर्मी 8. अधर्मव्यवसायी। पाँचवें गुणस्थान में आठ बोल पाये जाते हैं-1. संयतासंयत 2. प्रत्याख्याना-प्रत्याख्यानी 3. व्रताव्रती 4. संवृतासंवृत 5. बालपण्डित 6. सुप्त-जागृत 7. धर्माधर्मी 8. धर्माधर्मव्यवसायी। छठे गुणस्थान से चौदहवें गुणस्थान तक आठ बोल पाये जाते हैं-1. संयती 2. प्रत्याख्यानी 3. विरत 4. संवृत 5. पण्डित 6. जागृत 7. धर्मी 8. धर्मव्यवसायी।

**दूसरी तरह से गुणस्थान द्वार–**

गत्यन्तर (बाटा बहती अवस्था) जाते मार्ग में गुणस्थान तीन–**1,2,4**

अमर गुणस्थान तीन–**3,12,13**

अप्रतिपाति गुणस्थान तीन–**12,13,14**

तीर्थङ्कर नामगोत्र के बन्धक गुणस्थान पाँच–**4,5,6,7,8**

तीर्थङ्कर के लिए अस्पृश्य गुणस्थान पाँच–**1,2,3,5,11**

शाश्वत गुणस्थान छह–**1,4,5,6,7**[56]**,13**

अनाहारक[57] गुणस्थान पाँच–**1,2,4,13,14**

---

56. पंचसंग्रह भाग-2 गाथा-25 में सातवें गुणस्थान को भी शाश्वत माना गया है, जैसा कि कहा है-

**''मिच्छा अविरयदेसा, पमत्त अपमत्तया सजोगी य।**
**सव्वद्धं इयरगुणा, नाणाजीवेसु न होंती।।''**

अर्थात् 1,4,5,6,7,13-ये छह गुणस्थान नाना जीव की अपेक्षा सर्वदा पाये जाते हैं। पंच संग्रह भाग 1 गाथा 53 की टीका में सातवें गुणस्थान को शाश्वत बताया है। 'उत्तरपयडीयबन्धो' ग्रन्थ के काल द्वार की 942वीं गाथा की टीका में मन:पर्यवज्ञान में आहारक द्विक का बन्ध शाश्वत बताया है। आहारक द्विक का बन्ध 7वें गुणस्थान से लेकर 8वें गुणस्थान के छठे भाग तक होता है। लेकिन श्रेणि शाश्वत नहीं होने से 8वाँ गुणस्थान शाश्वत नहीं है। अत: सातवाँ गुणस्थान शाश्वत मानना उचित लगता है।

57. औदारिक आदि के पुद्गलों को ग्रहण नहीं करने वाले को 'अनाहारक' कहते हैं। पहला, दूसरा और चौथा गुणस्थान विग्रह गति की अपेक्षा से अनाहारक हैं और तेरहवाँ केवली-समुद्घात के तीसरे, चौथे और पाँचवें समयों की अपेक्षा अनाहारक है। चौदहवें गुणस्थान में तो आहार-पुद्गलों का ग्रहण होता ही नहीं, अत: वह अनाहारक है।

मोक्ष प्राप्त करने वाला जीव उस भव में कम से कम आठ गुणस्थान अवश्य प्राप्त करता है-**4,7,8,9,10,12,13,14** और इस संसार अवस्थान काल में कम से कम प्रथम गुणस्थान सहित नौ गुणस्थान प्राप्त करता है।

## 16. योग द्वार[58]

पहले, दूसरे और चौथे गुणस्थान में 13 योग (1. आहारक 2. आहारक मिश्र, इन दो को छोड़कर) पाये जाते हैं।

तीसरे गुणस्थान में 10 योग (1. औदारिक-मिश्र 2. वैक्रिय-मिश्र 3. आहारक 4. आहारक मिश्र और 5. कार्मण, इन पाँचों को छोड़कर) पाये जाते हैं। पाँचवें गुणस्थान में 12 योग (1. आहारक 2. आहारक मिश्र और 3. कार्मण, इन तीन को छोड़कर) पाये जाते हैं। छठे गुणस्थान में कार्मण के सिवाय चौदह योग पाये जाते हैं। सातवें से बारहवें गुणस्थान तक चार मनोयोग, चार वचनयोग और एक औदारिक, इस प्रकार नौ[59] योग पाये जाते हैं।

---

58. मन, वचन और काया के निमित्त से आत्मा के प्रदेशों में होने वाली चंचलता को 'योग' कहते हैं। इसके पन्द्रह भेद हैं।

59. (अ) प्रज्ञापना 21वाँ शरीर पद-आहारक शरीर केवल ऋद्धि प्राप्त प्रमादी को ही होता है, अप्रमादी को नहीं। (ब) दूसरे आदि कर्मग्रंथ में आहारक शरीर- अंगोपांग का उदय केवल छठे गुणस्थान में माना है, सातवें में नहीं। (स) भगवती शतक-8, उद्देशक-9 में जहाँ सर्वबंध और देशबंध-अर्थात् प्रारम्भ व पश्चात्वर्ती पूरे काल की चर्चा है, अन्तर्मुहूर्त्त प्रमाण वाले देशबंध का स्वामी भी प्रमत्त संयत को ही बताया गया है।

तेरहवें गुणस्थान में पाँच या सात योग होते हैं-पाँच होवें तो 1. सत्य मनोयोग 2. व्यवहार मनोयोग 3. सत्य वचन योग 4. व्यवहार वचन योग तथा 5. औदारिक-ये पाँच होते हैं। यदि सात हो, तो पाँच पूर्वोक्त और औदारिक मिश्र तथा कार्मण, इस प्रकार सात होते हैं। चौदहवें गुणस्थान में योग नहीं होता।

## 17. उपयोग द्वार

पहले और तीसरे गुणस्थान में छह उपयोग पाये जाते हैं-तीन अज्ञान-मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान, विभंग ज्ञान और तीन दर्शन-चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन। दूसरे, चौथे और पाँचवें गुणस्थान में छह उपयोग होते हैं-3 ज्ञान, 3 दर्शन। छठे से बारहवें तक सात उपयोग होते हैं-पूर्वोक्त छह और एक मन:पर्याय ज्ञान, लेकिन 10 वें गुणस्थान में 4 ज्ञान के ही उपयोग होते हैं[60]। तेरहवें और चौदहवें गुणस्थान में केवलज्ञान और केवलदर्शन-ये दो ही उपयोग होते हैं।

---

अप्रमत्त का निषेध किया गया है। (द) भगवती शतक 13 उद्देशक 9 में वैक्रिय लब्धि का प्रयोग कर यदि आलोचना किये बिना काल हो जाय, तो विराधक माना है। (य) टीकाग्रंथों में स्पष्ट उल्लेख है कि लब्ध्युपजीविता प्रमाद है। (र) समवायांग सूत्र के जीव-अजीव राशि के वर्णन में आहारक शरीर प्रमत्त को ही होना बताया है। इन सब कारणों से सातवें गुणस्थान में आहारक व वैक्रिय काययोग नहीं मानकर 9 योग मानना ही उचित लगता है।

60. भगवती सूत्र शतक 25 उद्देशक 7 में दसवें गुणस्थान में 4 ज्ञान के ही उपयोग बताये हैं, लेकिन क्षयोपशम की दृष्टि से 3 अनाकार उपयोग भी होते हैं। अत: क्षयोपशम की दृष्टि से 7 एवं प्रवृत्ति की दृष्टि से 4 उपयोग बोलना उचित प्रतीत होता है।

## 18. लेश्या द्वार

पहले गुणस्थान से छठे गुणस्थान तक छह लेश्याएँ पाई जाती हैं। सातवें गुणस्थान में तेजो, पद्म और शुक्ल-ये तीन लेश्याएँ होती हैं। आठवें से बारहवें तक एक शुक्ल लेश्या ही होती है। तेरहवें गुणस्थान में एक परम शुक्ल लेश्या होती है। चौदहवें गुणस्थान में लेश्या नहीं होती।

## 19. हेतु द्वार

हेतु सत्तावन होते हैं-5 मिथ्यात्व, 25 कषाय, 15 योग और 12 अव्रत (6 काय 5 इन्द्रिय 1 मन)।[61]

पहले गुणस्थान में आहारक और आहारक मिश्र को छोड़कर शेष पचपन हेतु पाये जाते हैं। दूसरे गुणस्थान में पाँच मिथ्यात्व को छोड़कर पचास हेतु पाये जाते हैं। तीसरे गुणस्थान में पूर्वोक्त पचास में से चार अनन्तानुबन्धी, औदारिक-मिश्र, वैक्रिय मिश्र और कार्मण-इन सातों के सिवाय तियालीस हेतु पाये जाते हैं। चौथे गुणस्थान में पूर्वोक्त तियालीस के साथ औदारिक मिश्र, वैक्रिय मिश्र और कार्मण-ये तीन मिलाने से छियालीस हेतु पाये जाते हैं। पाँचवें

61. छह काय की यतना न करना और पाँच इन्द्रिय तथा मन को वश में न रखना।

गुणस्थान में, छियालीस में से अप्रत्याख्यानी कषाय की चौकड़ी, त्रस की अविरति और कार्मण–ये छह घटा कर चालीस हेतु पाये जाते हैं। छठे गुणस्थान में सत्ताइस हेतु पाये जाते हैं–14 योग और 13 कषाय[62]। सातवें, आठवें गुणस्थान में औदारिक मिश्र, वैक्रिय, वैक्रिय मिश्र, आहारक और आहारक मिश्र इन पाँच को छोड़कर बाईस हेतु पाये जाते हैं। नौवें गुणस्थान में हास्य आदि छह के सिवाय 16 हेतु पाये जाते हैं। दसवें गुणस्थान में नौ योग और संज्वलन का लोभ, ये दस हेतु पाये जाते हैं। ग्यारहवें तथा बारहवें गुणस्थान में चार मन के, चार वचन के और एक औदारिक–ये नौ हेतु पाये जाते हैं। तेरहवें गुणस्थान में पाँच तथा सात हेतु पाये जाते हैं–1. सत्य मनोयोग, 2.व्यवहार मनोयोग, 3. सत्य भाषा, 4. व्यवहार भाषा, 5. औदारिक, 6 औदारिक–मिश्र और 7 कार्मण (औदारिक मिश्र व कार्मण ये दोनों हेतु केवली समुद्घात की अपेक्षा से समझना)। चौदहवें गुणस्थान में कोई भी हेतु नहीं होता।[63]

---

62. संज्वलन की चौकड़ी और नौ नोकषाय।
हेतु द्वार में मिथ्यात्व को मिथ्यात्व मोहनीय के उदय से होने वाले आत्म परिणाम के संकुचित (शुद्ध) अर्थ में लिया गया है। वहाँ मिथ्यात्व के पाँच भेद ग्रहण किये गये हैं और उनका संबंध मिथ्यात्व मोहनीय के विपाक उदय से होने के कारण मिथ्यात्व का हेतु केवल पहले गुणस्थान तक ही माना गया है।

63. हेतु द्वार को संक्षेप में स्मृति में रखने के लिए निम्न पद्धति सरल लगती है–55, 50, 43, 46, 40, 27, 22, 22, 16, 10, 9, 9, 5 या 7 तथा कोई हेतु नहीं।

## 20. मार्गणा द्वार[64]

पहले गुणस्थान में आगति मार्गणा पाँच (2,3,4,5,6) गति मार्गणा चार (3,4,5,7)

दूसरे गुणस्थान की आगति मार्गणा तीन (4,5,6) गति मार्गणा एक (1)

तीसरे गुणस्थान की आगति मार्गणा चार (1,4,5,6) गति मार्गणा चार (1,4,5,7)

चौथे गुणस्थान की आगति मार्गणा नौ (1,3,5,6,7,8,9, 10,11) गति मार्गणा पाँच (1,2,3,5,7)

पाँचवें गुणस्थान की आगति मार्गणा चार (1,3,4,6) गति मार्गणा पाँच (1,2,3,4,7)

छठे गुणस्थान की आगति मार्गणा एक (7) गति मार्गणा छह (1,2,3,4,5,7)

---

64. यहाँ मार्गणा का तात्पर्य सीधा आने व जाने के मार्ग से है। जैसे-पहले गुणस्थान में आगति मार्गणा पाँच यानी पहले गुणस्थान में जीव सीधा पाँच गुणस्थानों (2,3,4,5,6) से आ सकता है और गति मार्गणा चार यानी पहले गुणस्थान का जीव सीधा चार गुणस्थानों (3,4,5,7) में जा सकता है। इस द्वार में 1, 2 आदि संख्या दी है, ये गुणस्थानों के क्रम संख्या की अपेक्षा है।

सातवें गुणस्थान की आगति मार्गणा छह (1,3,4,5,6,8) गति मार्गणा तीन (6,8, काल करे तो 4)

आठवें गुणस्थान में आगति मार्गणा दो (7,9) गति मार्गणा तीन (7,9, काल करे तो 4)

नवें गुणस्थान में आगति मार्गणा दो (8,10) गति मार्गणा तीन (8,10, काल करे तो 4)

दसवें गुणस्थान की आगति मार्गणा दो (9,11) गति मार्गणा चार (9,11,12, काल करे तो 4)

ग्यारहवें गुणस्थान की आगति मार्गणा एक (10) गति मार्गणा दो (10, काल करे तो 4)

बारहवें गुणस्थान की आगति मार्गणा एक (10) गति मार्गणा एक (13)

तेरहवें गुणस्थान की आगति मार्गणा एक (12) गति मार्गणा एक (14)

चौदहवें गुणस्थान की आगति मार्गणा एक (13) गति मार्गणा एक-मोक्ष।[65]

---

65. उपशम श्रेणि वाला 8वें गुणस्थान से चढ़ते हुए 11 वें के पहले नहीं गिरता है, काल कर सकता है। क्षपक श्रेणि वाला तो गिरता ही नहीं है, वह तो अन्तर्मुहूर्त में केवली हो ही जाता है।

## 21. ध्यान द्वार[66]

पहले, दूसरे और तीसरे गुणस्थान में आर्त्तध्यान तथा रौद्रध्यान पाये जाते हैं। चौथे और पाँचवें में आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान और धर्मध्यान पाये जाते हैं। छठे में आर्त्तध्यान और धर्मध्यान होता है। सातवें में केवल धर्मध्यान ही है। आठवें से चौदहवें तक शुक्लध्यान पाया जाता है।

## 22. दण्डक द्वार

पहले गुणस्थान में चौबीस दण्डक, दूसरे में चौबीस में से पाँच स्थावर के छोड़कर उन्नीस, तीसरे और चौथे में (उन्नीस में से तीन विकलेन्द्रिय के छोड़कर) सोलह, पाँचवें में संज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य-ये दो, छठे से चौदहवें गुणस्थान तक मनुष्य का एक दण्डक पाया जाता है।

## 23. जीवयोनि द्वार

पहले गुणस्थान में चौरासी लाख[67] जीवयोनि। दूसरे गुणस्थान

---

66. ध्यान सन्नी जीवों के पर्याप्त में ही होता है। छद्मस्थ में चित्त की एकाग्रता को तथा केवली भगवन्तों में तेरहवें गुणस्थान में योग-निरोध की अपेक्षा तथा चौदहवें गुणस्थान में उपयोगीपन की अपेक्षा से ध्यान कहा जाता है।
67. चौरासी लाख जीवयोनि इस प्रकार हैं-7 लाख पृथ्वीकाय, 7 लाख अप्काय, 7 लाख तेउकाय, 7 लाख वायुकाय, 10 लाख प्रत्येक वनस्पतिकाय, 14 लाख साधारण वनस्पतिकाय, 2 लाख द्वीन्द्रिय, 2 लाख त्रीन्द्रिय, 2 लाख चतुरिन्द्रिय, 4 लाख देवता, 4 लाख नारकी, 4 लाख तिर्यंच पंचेन्द्रिय और 14 लाख मनुष्य।

में (एकेन्द्रिय की 52 लाख छोड़कर) बत्तीस लाख। तीसरे, चौथे गुणस्थान में (तीन विकलेन्द्रिय की छह लाख घटाकर) छब्बीस लाख, पाँचवें गुणस्थान में (चौदह लाख मनुष्यों की और चार लाख तिर्यंचों की) अठारह लाख, छठे गुणस्थान से चौदहवें गुणस्थान तक मनुष्य की चौदह लाख जीवयोनियाँ पाई जाती हैं।

## 24. निमित्त द्वार

पहले से चौथे तक चार गुणस्थान, दर्शनमोहनीय के निमित्त से होते हैं। पाँचवें से बारहवें तक आठ गुणस्थान चारित्र मोहनीय के निमित्त से होते हैं और तेरहवाँ योगों के सद्भाव रूप निमित्त से तथा चौदहवाँ गुणस्थान योगों के अभाव रूप निमित्त से होता हैं।

## 25. चारित्र द्वार

पहले से चौथे गुणस्थान तक चारित्र नहीं होता, पाँचवें गुणस्थान में देश चारित्र, छठे और सातवें गुणस्थान में तीन चारित्र होते हैं- 1. सामायिक[68] 2. छेदोपस्थापनीय[69] और 3. परिहार विशुद्धि[70]।

---

68. जिस चारित्र में समता-भाव की प्राप्ति हो, उसे 'सामायिक चारित्र' कहते हैं।
69. पहले ग्रहण किये हुए संयम को छेद कर फिर संयम में आना- अर्थात् पहले जितने दिन संयम पालन किया हो, उसे न गिन कर दूसरी बार संयम लेने के समय से दीक्षाकाल गिनना और बड़े छोटे का व्यवहार करना, इसे 'छेदोपस्थापनीय चारित्र' कहते हैं।
70. जिसमें परिहार-विशुद्ध नाम की तपस्या की जाती है, उसे 'परिहार-विशुद्धि चारित्र' कहते हैं। इस चारित्र की आराधना छेदोपस्थापनीय चारित्र वाले ही कर सकते हैं।

आठवें, नौवें गुणस्थान में दो चारित्र होते हैं-1. सामायिक 2. छेदोपस्थापनीय। दसवें गुणस्थान में एक सूक्ष्मसम्पराय चारित्र[71] होता है। ग्यारहवें से चौदहवें गुणस्थान तक यथाख्यात[72] चारित्र होता है।

## 26. आकर्ष द्वार[73]

पहले गुणस्थान का तीसरा भंग (सादि सपर्यवसित), तीसरा, चौथा और पाँचवाँ गुणस्थान एक भव की अपेक्षा जघन्य एक बार, उत्कृष्ट पृथक्त्व हजार बार प्राप्त हो सकता है। अनेक भवों की अपेक्षा जघन्य दो बार, उत्कृष्ट असंख्यात बार प्राप्त हो सकता है। दूसरा गुणस्थान एक भव की अपेक्षा जघन्य एक बार, उत्कृष्ट दो बार और अनेक भवों की अपेक्षा जघन्य दो बार, उत्कृष्ट पाँच बार प्राप्त हो सकता है। छठा और सातवाँ गुणस्थान[74] मिलाकर एक भव

---

71. जिस चारित्र में कषाय का सूक्ष्म उदय रहता है, उसे 'सूक्ष्मसंपराय चारित्र' कहते हैं। इसमें सूक्ष्म (संज्वलन) लोभ का ही उदय होता है।
72. जिस चारित्र में लेश मात्र भी कषाय नहीं रहती, उसे 'यथाख्यात चारित्र' कहते हैं।
73. जीव एक भव की अपेक्षा और अनेक भवों की अपेक्षा प्रत्येक गुणस्थान को जघन्य और उत्कृष्ट कितनी बार फरस सकता है, उस फरसने की संख्या विशेष को आकर्ष कहते हैं।
74. वैसे तो छठे सातवें गुणस्थान में जीव एक भव में करोड़ों बार आ जा सकता है, लेकिन इन दोनों गुणस्थानों को छोड़कर वापिस इन्हीं गुणस्थानों में जीव पृथक्त्व 100 बार से ज्यादा नहीं आ सकता है।

की अपेक्षा जघन्य एक बार, उत्कृष्ट पृथक्त्व 100 बार, अनेक भवों की अपेक्षा जघन्य दो बार, उत्कृष्ट पृथक्त्व 1000 बार। आठवाँ, नववाँ, दसवाँ गुणस्थान एक भव में जघन्य 1 बार, उत्कृष्ट 4 बार, अनेक भवों की अपेक्षा जघन्य दो बार, उत्कृष्ट नौ बार। ग्यारहवाँ गुणस्थान एक भव की अपेक्षा जघन्य 1 बार, उत्कृष्ट 2 बार, अनेक भवों की अपेक्षा जघन्य दो, उत्कृष्ट चार बार। बारहवाँ, तेरहवाँ, चौदहवाँ गुणस्थान एक भव में एवं एक बार ही प्राप्त होता है।

## 27. समकित द्वार

क्षायिक सम्यक्त्व चौथे गुणस्थान से चौदहवें गुणस्थान तक होता है। उपशम सम्यक्त्व चौथे गुणस्थान से ग्यारहवें गुणस्थान तक होता है। क्षायोपशमिक (वेदक) सम्यक्त्व चौथे से सातवें गुणस्थान तक होता है। सास्वादन सम्यक्त्व दूसरे गुणस्थान में होता है। मिथ्यात्व और मिश्र गुणस्थान में सम्यक्त्व नहीं है।

## 28. अन्तर द्वार

पहले गुणस्थान के तीसरे भंग का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट 66 सागर झाझेरा है। दूसरे से लेकर ग्यारहवें गुणस्थान (चौथे गुणस्थान को छोड़कर) तक का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त

और उत्कृष्ट देशोन (कुछ कम) अर्द्ध पुद्गल परावर्तन है, किन्तु चौथे गुणस्थान का जघन्य अन्तर एक समय है[75]। बारहवें, तेरहवें और चौदहवें गुणस्थान का अन्तर नहीं है[76]।

---

75. भगवती सूत्र शतक-12 उद्देशक-9 में धर्मदेव का संचिट्ठण काल जघन्य एक समय का ही माना गया है। जीवाभिगम सूत्र में असंयति का जघन्य अन्तर एक समय बताया गया है। इस अपेक्षा से चौथे गुणस्थान का जघन्य अन्तर एक समय मानना उपयुक्त लगता है।

76. किसी गुणस्थान से एक बार च्युत हो कर दूसरी बार फिर उसी गुणस्थान में आने तक जितना काल बीच में व्यतीत होता है, उसे 'अन्तर' कहते हैं। मिथ्यात्व गुणस्थान के पहले दो भंगों में अन्तर नहीं होता क्योंकि वे उस गुणस्थान से छूटते ही नहीं हैं। दूसरे गुणस्थान से लेकर ग्यारहवें गुणस्थान (चौथे गुणस्थान को छोड़कर) के जीव, अपने गुणस्थान से च्युत होकर कम से कम अन्तर्मुहूर्त्त में और अधिक से अधिक कुछ कम अर्द्ध पुद्गल परावर्तन काल में उन उन गुणस्थानों में आते हैं, इसी कारण इनमें इतने समय का अन्तर बतलाया गया है। बारहवें, तेरहवें और चौदहवें गुणस्थान वाले जीव इन गुणस्थान से च्युत होकर फिर इन गुणस्थान में नहीं आते, एक बार चढ़कर सिद्ध हो जाते हैं। अतएव इनका कुछ भी अन्तर नहीं हैं। यह अन्तर एक जीव की अपेक्षा है।
बहुत जीवों की अपेक्षा अन्तर इस प्रकार है-उपशम श्रेणि के (आठवाँ, नवमाँ, दसवाँ, ग्यारहवाँ) गुणस्थानों का अन्तर जघन्य एक समय, उत्कृष्ट पृथक्त्व वर्ष का, क्षपकश्रेणि के (आठवाँ, नवमाँ, दसवाँ, बारहवाँ, चौदहवाँ) गुणस्थानों का अन्तर जघन्य एक समय, उत्कृष्ट छह माह का, दूसरे व तीसरे गुणस्थानों का अन्तर जघन्य एक समय, उत्कृष्ट पल के असंख्यातवें भाग का होता है। शेष छह गुणस्थान शाश्वत होने से बहुत जीवों की अपेक्षा उनका अन्तर नहीं होता है। आठ अशाश्वत गुणस्थानों में दूसरा व तीसरा उत्कृष्ट असंख्याता उत्सर्पिणी अवसर्पिणी तक तथा शेष छह गुणस्थान उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त तक निरन्तर रह सकते हैं।

# 29. अल्प बहुत्व द्वार

ग्यारहवें गुणस्थान वाले जीव सब से थोड़े हैं और वे प्रतिपद्यमान की अपेक्षा 54 ही पाये जाते हैं[77]। ग्यारहवें गुणस्थान की अपेक्षा बारहवें और चौदहवें गुणस्थान वाले संख्यात गुण अधिक हैं। क्षपक-श्रेणि वाले प्रतिपद्यमान एक सौ आठ और पूर्वप्रतिपन्न पृथक्त्व सौ पाये जाते हैं। इनसे आठवें, नौवें और दसवें गुणस्थान वाले परस्पर तुल्य एवं बारहवें गुणस्थान वालों की अपेक्षा विशेषाधिक होते हैं। इन तीनों गुणस्थानों के मिलाकर संख्यात गुण हैं। किन्तु दोनों श्रेणियों में मिलाकर भी पृथक्त्व[78] सौ ही हैं। उनकी अपेक्षा तेरहवें गुणस्थान वाले संख्यात गुण हैं और ये एक समय में पृथक्त्व करोड़ पाये जाते हैं। उनकी अपेक्षा सातवें गुणस्थान वाले संख्यात गुण हैं और ये एक समय में पृथक्त्व हजार करोड़[79] पाये जाते हैं।

---

77. यह 54 की संख्या प्रतिपद्यमान (वर्त्तमान) एक समय में श्रेणि प्रारंभ करने वालों की अपेक्षा से है। पूर्वप्रतिपन्न हो, तो वे इनसे विशेष होंगे। यही बात 12 वें और 14 वें गुणस्थान के विषय में भी समझनी चाहिए।

78. पृथक्त्व का अर्थ प्राय: 2 से 9 तक माना जाता है।

79. छठे, सातवें गुणस्थान की अल्पबहुत्व कर्मग्रन्थ भाग-5 की गाथ-63 के विवेचन के आधार पर दी गयी है। वहाँ सातवें गुणस्थान वालों की संख्या उत्कृष्ट दो हजार करोड़ बतायी है तथा छठे गुणस्थान वाले इनसे संख्यात गुणा होने से छह, सात हजार करोड़ हो सकते हैं।

उनकी अपेक्षा छठे गुणस्थान वाले संख्यात गुण हैं और ये भी एक समय में पृथक्त्व हजार करोड़ पाये जाते हैं। उनकी अपेक्षा पाँचवें गुणस्थान वाले असंख्यात गुण हैं[80]। इनकी अपेक्षा दूसरे गुणस्थान वाले असंख्यात[81] गुण हैं। दूसरे गुणस्थान वालों की अपेक्षा तीसरे गुणस्थान वाले जीव असंख्यातगुण[82] हैं। तीसरे गुणस्थान वालों की अपेक्षा चौथे गुणस्थान वाले असंख्यात गुण[83] हैं। चौथे गुणस्थान वालों से[84] पहले गुणस्थान वाले जीव अनन्तगुण[85] हैं। उक्त अल्प बहुत्व उत्कृष्ट संख्या की अपेक्षा से है। जघन्य में संख्या कम भी हो सकती है।

**।। गुणस्थान स्वरूप समाप्त।।**

❑❑❑

---

80. क्योंकि असंख्यात गर्भज तिर्यंच भी इस पाँचवें गुणस्थान में हैं।
81. दूसरे गुणस्थान वाले पाँचवें गुणस्थान से असंख्यात इस कारण हैं कि पाँचवाँ गुणस्थान केवल मनुष्य और तिर्यंचों को होता है, किन्तु दूसरा गुणस्थान तो चारों गति के जीवों को हो सकता है। इसके सिवाय दूसरा गुणस्थान विकलेन्द्रियों को भी होता है, परन्तु पाँचवाँ नहीं हो सकता।
82. यद्यपि दूसरा और तीसरा गुणस्थान चारों गतियों में पाया जाता है, परन्तु दूसरे गुणस्थान की उत्कृष्ट स्थिति की अपेक्षा तीसरे की उत्कृष्ट स्थिति संख्यात गुणी है, तथा दूसरा गुणस्थान तो मात्र उपशम समकित से गिरते हुए ही आ सकता है, किन्तु मिश्र गुणस्थान

# सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल के विविध सेवा सोपान

जिनवाणी हिन्दी मासिक पत्रिका का प्रकाशन

जैन इतिहास, आगम एवं अन्य सत्साहित्य का प्रकाशन

अखिल भारतीय श्री जैन विद्वत् परिषद् का संचालन

उक्त प्रवृत्तियों में दानी एवं प्रबुद्ध चिन्तकों के रचनात्मक सक्रिय सहयोग की अपेक्षा है ।


सम्पर्क सूत्र

मंत्री

**सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल**

दुकान नं. 182 के ऊपर, बापू बाजार

जयपुर-302003 (राजस्थान)

दूरभाष : 0141-2575997, फैक्स : 0141-4068798

ई-मेल : sgpmandal@yahoo.in

मिथ्यात्व से चढ़ते हुए अथवा क्षयोपशम से गिरते हुए चौथे, पाँचवें, छठे किसी भी गुणस्थान से आ सकता है। इस कारण तीसरे गुणस्थान वाले जीव दूसरे से असंख्यात गुण हैं।

83. तीसरे गुणस्थान की अपेक्षा चौथे की स्थिति बहुत अधिक है और वह भी चारों गति में पाया जाता है। अतः चौथे गुणस्थान वाले जीव, उनकी अपेक्षा अधिक है।

84. यहाँ एक बोल और भी कहते हैं-चौथे गुणस्थान से सिद्ध भगवंत अनन्त गुण हैं। सिद्धों से पहले गुणस्थान वाले अनन्त गुण हैं।

85. सूक्ष्म व साधारण वनस्पतिकाय के सभी जीव मिथ्यादृष्टि हैं, अतएव पहले गुणस्थान वाले, चौथे गुणस्थान वालों से अनन्त गुण हैं।